॥ श्री ॥

बालब्रह्मचारी श्रीअमोलकऋषिजी
महाराजप्रणीत

सद्धर्म-बोध.

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः ॥
—महाभारत.

प्रकाशिका,

श्री. नेनीबाई भ्र. लखमीचंद गायकवाड,

प्रति ५००

सोलापुर.

मूल्य सदुपयोग

❀ किन वारोंको किन तीर्थंकरोंका स्मरण ❀ करना और स्तवन गाना ?

रवीवार— ६ श्री पद्मप्रभस्वामी.

सोमवार— ८ श्री चंद्रप्रभस्वामी.

मंगलवार– १ १ श्रीवासुपूज्यस्वामी.

बुधवार— १ ३ श्री विमलनाथ स्वामी. १ ४ श्री अनंतनाथ स्वामी. १५ श्री धर्मनाथस्वामी. १६ शांतिनाथ स्वामी. १७ श्रीकुंथुनाथस्वामी १८ अरहनाथ स्वामी. २१ श्री नमिनाथ. २४ महावीरस्वामी.

गुरुवार— १ श्री ऋषभदेवस्वामी. २ श्री अजितनाथ स्वामी ३ श्री संभवनाथस्वामी. ४ श्री अभिनंदन स्वामी. ५ श्री सुमतिनाथस्वामी. ७ श्री सुपार्श्वनाथस्वामी. १० श्री शीतलनाथस्वामी. ११ श्री श्रेयांसनाथस्वामी.

शुक्रवार— ९ श्री सुविधिनाथस्वामी.

शनिवार—१९ श्री मल्लिनाथस्वामी. २० श्री मुनिसुव्रत स्वामी. २२ श्री. नेमिनाथस्वामी. २३ श्री पार्श्वनाथस्वामी.

—o—

— ॐ परमेश्वराय नमः —

॥ सद्धर्म—बोध ॥

TRUE RELIGIOUS TEACHINGS

BY

SHRI AMOLAKH RISHIJEE.

बालब्रह्मचारी मुनि श्रीअमोलकऋषिजी महाराजने बनाया

और

श्री नेनीबाई लखमीचन्द् गायकवाड सोलापुरने प्रकाशित किया.

—=—

मुद्रक—श्री० वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री
कल्याण पॉवर प्रिंटिंग प्रेस, सोलापुर.

———

विक्रम संवत् १९९८ शके १८६३ वीर सं. २४६७
मिती वैशाख सुदी ३ तारीख २९—४—४१

प्रस्तावना.

पोथी प्यारी प्रेम की हर हिवडे को हार ।
जीव जतन कर राखजो पोथी सेती प्यार ॥ १ ॥
जलसुं जतन कर राखजो तेल अगनसुं दूर ।
मूरख हाथ मत दीजिये जोखम खाय जरूर ॥ २ ॥

परमपूज्य मुनिराज श्री १००८ रतनचंदजी महाराजके संप्रदायके तरणतारण बालब्रह्मचारी परमप्रतापी पूज्य श्री १००८ मुनिश्री हस्तिमल्लजीमहाराज व बडा मुनिश्री सुजानमलजी महाराज आदि ठाणे ५ साधुवोंका यहांपर पदार्पण हुआ, उस समय उनके उपदेशसे हर्षित व प्रभावित होकर जोधपुर मारवाड निवासिनी हाल मु. सोलापुर बीजापुर वेस **ननीबाई भ्रतार लखमीचंद गायकवाडने** इस पुस्तकके प्रकाशनकी भावना बताई । अत एव संसारमें समस्त प्राणियोंको सुख पहुंचानेवाले अहिंसाधर्मके पोषक इस पुस्तकको अपने खर्चसे उक्त बाईने प्रकाशित किया है । इस पुस्तक की रचना पूज्य तपोनिधि अमोलक ऋषिजीने परिश्रमके साथ की है, इसका अध्ययन कर सज्जनोने सद्धर्मबोध किया तो सबकी भावना सफल होगी ।

कल्याण पावर प्रिंटिंग प्रेसके मालिक **श्रीविद्यावाचस्पति पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री न्यायकाव्यतीर्थने** इसका संशोधन कर शुद्धताके साथ मुद्रणकर देनेका कष्ट उठाया इसके लिए उनको धन्यवाद है ।

चाटीगल्ली } विनीत
सोलापुर } **पारसमल मिलापचंद सुराणा**

= श्री परमात्मने नमः =

सद्धर्म-बोध ।

मंगलाचरणम् ।

परमेश्वरं नमस्कृत्य । धर्मबोधादिदायकः ॥
वक्ष्ये आत्मोद्धारार्थं । ग्रन्थः सद्धर्मबोधकः ॥ १ ॥

प्रथम धर्मोपदेशक सद्बोधके कर्ता श्री परमेश्वरको नम्रतापूर्वक नमस्कार करके स्वात्म व परमात्माके उद्धारार्थ इस सद्धर्म बोध ग्रंथका प्रारंभ करता हूं । यह सब जीवोंके हितका कर्ता बने ।

मनुष्य और पशुमें भिन्नता ।

आहारनिद्राभयमैथुनानि,
तुल्यानि सार्धं पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो विशेषः खलु मानुषाणां,
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥ १ ॥

सर्व अवतारिक महापुरुषोंने और सर्व शास्त्रोंने सर्व जीवायोनीमें मनुष्य जन्मके प्राप्तीकी दुर्लभता, अत्यंत आवश्यकता और सबसे परमोत्कृ-

ष्टता बताई है। जिसका मुख्य कारण क्या है? ऐसे प्रश्नका उद्भव अंतःकरणमें स्वाभाविक ही होता है, क्यों कि जिस प्रकार मनुष्य अपनी योग्यता अनुसार आहार (भोजन) का उपयोग करता है, निद्रा आती है तब निद्रित होता है, भयोत्पादक वस्तु के बनावसे डरता है और स्त्री पुरुषके संग विषयोपभोगमें रक्त होता है, तैसे ही स्वजन स्नेहियों का पालन पोषण और शत्रुका तिरस्कार करता है, तैसे ही जगतके सब प्राणी-पशु-गौ, वृषभ, घोडे, हस्ती, मृग, शसक वगैरे पृथ्वी पर चलनेवाले चतुष्पद जानवर, पक्षी, हंस, तोते, चिडी, कउवे वगैरे आकाशमें उडने वाले और अर्पादि—सर्प अजगर वगैरे उरपर चलनेवाले प्राणी इत्यादि अपनी २ योग्यतानुसार आहार करते हैं. निद्रा लेते हैं, भय कारक वस्तु से डरते हैं. विषयोपभोग भोगते हैं, स्वकुटुम्बादि का पालन पोषण और शत्रु का तिरस्कार भी यथाशक्ति करते हैं, फिर मनुष्य में और पशु में विशेषता क्या है?

तैसे ही जो आकृति सम्बन्धी विचार करें तो बन्दर के शरीर की आकृति और मनुष्य के शरीर की आकृति यह भी बहुत मिलती हुई है, किंबहुना बन्दर के पूंछ अधिक होने से वह मनुष्य से भी अधिक अवयव का धारक हुआ तो क्या उसको महामनुष्य कहा जायगा ? नहीं, उसको कदापि कोई मनुष्य नहीं कह सकेगा.

पशु से मनुष्य की विशेषता ।

फिर सर्व योनी से मनुष्य जन्मकी परमोत्कृष्टता और दुर्लभता बता कर जो प्रशंसा की है इसमें हेतु कुछ होना ही चाहिये ? वह परमोत्कृष्ट कारण उक्त श्लोक में खुलासा बता दिया है कि " धर्मो विशेषः खलु मानुषाणां " अर्थात् मनुष्य के सिवाय अन्य पशु पक्षी आदिक प्राणियों के अंग में धर्म करने की शक्ति नहीं है, क्यों कि उनमें प्रायः वाचा शक्ति नहीं है, और ज्ञान भी नहीं है, इस कारण से वे धर्माधर्म पुण्य पाप के कृत्य में नहीं समज सकते हैं. और

विशेष कर पराधीन होने के कारण से तथा सत्संग के अभाव से वे केवल अपने पेट भरने के उद्योग मे अधिक कुछ नहीं कर सकते हैं। प्राप्त जन्मको प्रपंच में दुष्कृत्यमें लगा कर आयुष्य पूर्ण करते हैं! और " आसा जहां वासा " इस योग से जन्म मृत्यु के फन्दे में फंसते हैं। मनुष्य को वाचा शक्ति, स्वाधीनता, सत्संगति के योग्य, सद्ज्ञान, श्रवण करनेकी मनन करनेकी व निर्णय पूर्वक निश्चयात्मक बननेकी और उस मुजब दुष्कृत्योंका त्याग शुद्ध कृत्यको स्वीकार कर उसी प्रमाण वर्तने (चलने) वगैरा की शक्ति प्राप्त हुई है। यही अधिकता अन्य योनीसे मनुष्य जन्म में है।

अधर्मी मनुष्य पशू से भी नीच है।

दोहा–तबही जन्म में आवनो, होना ईश्वर दास।
नहीं तो कुछ थोडी नहीं, श्वान शुकरकी रास॥
प्राप्त जन्मका सार यह, पापंपक न लगाय।
अमोल कहे उत्तम वही, देवस्वरूप ओलखाय॥

इस मनुष्य जन्म को प्राप्त होकर परमेश्वर

की आज्ञा (धर्म) को स्वीकार किया तो ही जन्म प्राप्तिका सार किया ऐसा समझना, नहीं तो उस अधम मनुष्य का जन्म श्वान-कुत्ते व शूकर (सूवर) से भी खराब जानना, क्यों कि कुत्ता जिसका अन्न भक्षण कर अपने शरीर का रक्षण करता है उसकी भक्ति जैसी करता है वैसी मनुष्य करता है क्या? नहीं, कदापि नहीं। देखो जिस धर्म पुण्य की कृपा से अपनेको सर्वोत्तम मनुष्य देह, सुख, संपत्ति, संतति आदि की प्राप्ति हुई है, उस धर्म की कभी याद भी आती है? और काम क्रोध, मद, मोह, लोभ, मत्सर षट्रिपु के प्रसंग से अपनने चौरासी लक्ष जीवा जौनीमें अनेक प्रकार के दुःख भोगे हैं उनका भी कभी स्मरण होता है? ऐसे अधम पापी मनुष्य को किस की उपमा देना। भर्तृहरिराजा ने नीतिशतक में कहा है कि:—

येषां न विद्या न तपो न दानं, ।
न जाप शीलं न गुणो न धर्मः ॥

ते मृत्युलोके भुवि भारभूता,।
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरंति ॥ १ ॥

विशेषार्थ-ऐसे उत्तम मनुष्य जन्म को प्राप्त कर जिस मनुष्य में ' न विद्या, उदरपूर्ण करने के लिये या द्रव्य (धन) प्राप्त करने के लिये विद्याभ्यास कर के गवरनर बॉरिष्टरादि बडी पद्वी प्राप्त की होगी, परन्तु जिस विद्या (ज्ञान) द्वारा आत्मोन्नति होवे ऐसी धर्म विद्या-ज्ञान का अभ्यास करा नहीं, ' न तपो, ' सदैव पेक्षा-आधिक रस युक्त पकवान्न-मिष्टान्न का भक्षण करके एकादशी जैसे तप किये होंगे ❀ परंतु जिस तपश्चर्या कर के काम क्रोधादि षड्रिपु का दमन होवे ऐसे निराहार तप

सवैया—गिरी और छुहारे खाय, किसमिस और बदाम चाय
साठे और सिंघाडें से, होत दिल स्वादी है ॥
गूंद गिरी कलाकन्द, अरबी और सकरकन्द,
कुंदन के पेडे खाय, लोटे बडी गादी है ॥
खरबूजे तरबूजे और अम्ब जाम्बू लिम्बू जोर।
सिंघाडे के सीरे से भूक को भगादी है ॥
कहत है नारायण करत है दूनी हान,
कहने की एकादशी पन द्वादशी की दादी है ॥ १ ॥

किये नहीं, 'न दानं,' नाम कमाने के लिये लग्नादि (विवाहादि) सम्बन्ध में तथा मोज आनन्द में अपनी शक्ति से अधिक धन का खरच कर के आनन्द माना होगा, परन्तु धर्मोन्नतिके लिये अनाथ अपंगे दुःखी प्राणी को पोषणे के लिये कभी फूटी कोडी का भी दान दिया नहीं, 'न जपं' व्याधिग्रस्त [बीमार] हो कर, व संकट में फस कर भगवान् का नामस्मरण (जप) किया होगा, परन्तु सुख में कभी भगवान् को याद किया नहीं, 'न शीलं,' दरिद्रता रोग आदिक प्रसंग में ब्रह्मचर्य का पालन किया होगा, परन्तु श्रीमान् शक्तिमान्, आरोग्य सुदृढ शरीरी होकर परस्त्री तथा

श्लोक--अन्नकंदत्यागं निद्रा, फल सेजं च मैथुनं ॥
व्यापारविक्रयं क्षौरं, काष्ठदंतं स्नानवर्जनं ॥

अर्थ--१ अन्न, २ कन्द, ३ निद्रा, ४ फल, ५ शैय्या, ६ मैथुन ७ खरीदी, ८ बेचना, ९ मुंडन, १० काष्ट से दांत घर्षण, और ११ स्नान, इन ११ कामों का त्याग करे उसे एकादशीव्रत कहना।

श्लोक--एकादशी अहोरात्रि, अम्बु त्यागी जे नरा।
सिध्यंति द्वादश भव, न च संशय युधिष्टरा ॥

अर्थ--धर्मराज ! जो एकादशी को पानी भी नहीं पीता है वह द्वादश भव में सिद्ध होता है इसमें संशय नहीं करना।

वेश्या का भी त्याग किया नहीं ' न गुणो, ' स्वार्थ साधन को तथा बलबान् के सन्मुख गुणानुवाद किया होगा परन्तु निस्वार्थ बुद्धिसे परमेश्वर के व सत्पुरुषोंके गुणानुवाद किये नहीं. ' न धर्मः ' अहिंसा, सत्य, निर्ममत्व, ध्यान, मौन वगैरा पराधीनता से धारण किये होंगे परन्तु आत्महित के लिये नहीं. इस प्रकार के मनुष्य का जन्म इस पृथ्वी पर " खानेको काल और भूमी पर भार " इस कहावत प्रमाणें हैं। जंगल के हिरण (मृग) पशु जैसा है। तब हिरन का पक्ष धारण कर एक विद्वान् बोलाः—

स्वरे शीर्ष्यं जने मांसं, त्वचा च ब्रह्मचारिणे ॥
शृंगं योगीश्वरे दद्यात्, मृगस्त्रीषु लोचने ॥ १ ॥

मृग से कस्तूरी उत्पन्न होती है वह अनेक पुण्य की कर्ता और सुगन्धी होनेके कारण से सुवर्ण से भी अधिक मूल्यवान् होती है, कितनेक पापी लोग मृग के मांस को भी भक्षण करते हैं. मृग के चमड़े को पवित्र मान कर कितनेक तपस्वी बिछाते हैं, मृग के शृंग की ध्वनि को मांग-

लिक मान कर योगीयों घरों घर फूंकते फिरते हैं और सुन्दर स्त्री की आंखोंको-कुरंगनयना, मृगाक्षी ऐसी उपमा देते हैं इत्यादि अनेक गुण के धारक मृग की उपमा उस अधम मनुष्यको देना योग्य नहीं।

तब ज्ञानी बोले-"मनुष्यरूपेण गावश्चरंति" अर्थात्-अधर्मी मनुष्य गौ पशु के जैसा है. तब गौका पक्ष धारण कर विद्वान् बोलाः—

तृणमपि दुग्धं धवलं, गोमयं गेहमण्डनं ॥
रोगप्रहारि मूत्रं, पुच्छं सुरकोटिसंस्थानं ॥ २ ॥

तृण (घास) जैसी तुच्छ वस्तु खाकर दुग्ध समान अत्युत्तम पदार्थ देती है जिससे मक्खन, घी, आदि अनेक स्वादिष्ट पदार्थ बनते हैं। गाय के गोबरसे घर साफ होता है । गौमूत्रसे रोग शांत होते हैं तथा पुराणोंमें लिखा है कि गायके पूछमें ३३ करोड देवताओंका निवासस्थान है, ऐसे उत्तम प्राणीकी उपमा उस नीच पुरुषसे देना उचित नहीं है।

तब ज्ञानी बोले—' मनुष्यरूपेण तृणानि मन्ये ' अर्थात्—अधर्मी मनुष्य तृण जैसा तुच्छ है । तब तृणका पक्ष धारण करके विद्वान् बोला—

गवि दुग्धे रणे ग्रीष्मे, वर्षाहेमन्तयोरपि ।
तृणां त्राण महं स्यात्, तत्समत्वं कथं तृणं ॥ ३ ॥

तृणको गाय खाती है, जिससे दूध जैसा उत्तम पदार्थ उत्पन्न होता है । गरमी और सर्दी और वर्षाकालमें छाया आदि कर मनुष्यको आराम देता है । ऐसे तृणसे उस अधर्मीकी उपमा कैसे दी जा सकती है ।

तब ज्ञानी बोले—'मनुष्यरूपेण भवन्ति वृक्षाः' अर्थात्—अधर्मी मनुष्य वृक्षके समान है ।

तब विद्वान् वृक्षका पक्ष लेकर बोलाः—

छायां प्रकुर्वते लोके, फलं पुष्पं च ददाति ।
पक्षिणां सर्वदाधारं, गृहद्वारं च हेतवे ॥ ४ ॥

वृक्ष धूपसे व्याकुल मनुष्यको छांया ठंडक पहुंचाता है, पत्र पुष्प इत्यादिक देकर सब जगत् को पोषता है तथा पक्षियोंका तो सब प्रकारसे आधार ही है। ऐसे गुणाढ्य पदार्थकी उपमा अधर्मी

मनुष्यको देना योग्य नहीं। है सुखमय वृक्ष तो अधर्मी पुरुषकी उपमा कहां ?

तब ज्ञानी बोले— 'मनुष्यरूपेण धूलिश्च पूंजा' अर्थात्—अधर्मी पुरुष धूलका ढेर जैसा है।

तब विद्वान् बोला—

कारण्यामि शिशुक्रीडा, पंखाना शंकरे मिव ।
मतो जनो निरज पर्वो लेखाक्षिप्त फलं प्रदं ॥ ५ ॥

धूलके ढेरसे बच्चे खेलते हैं, उनका मनोरंजन होता है। घर आदि बनानेमें मट्टी काम आती है, होली पर्वके दिन बडे २ लोग धूल सरपर डालते हैं तथा पत्रादि लिखकर ऊपरसे धूल डालते हैं और उसको मंगल मानते हैं। ऐसे उत्तम पदार्थ की उपमा अधर्मी मनुष्यको कैसे दी जा सकती है?

तब ज्ञानी बोले— 'मनुष्यरूपेण भवंति श्वानः' अर्थात्—अधर्मी मनुष्य कुत्तोंके समान है।

इसपर विद्वान् बोला—

स्वामिभक्तः सुचैतन्यः, स्वल्पनिद्रः सदोद्यमी ।
अल्पसन्तोषवान् शूरः, तत्तुल्यश्च नरः कथं ॥ ६ ॥

कुत्ता स्वामीका अत्यंत भक्त है, बहुत थोडी

निद्रा लेता है, सदा उद्यमशील है, अति संतोषी है तथा स्वामीके मालकी रक्षा करनेमें डरता नहीं, ऐसे कुत्तेकी उपमा अधर्मी पुरुषसे कौन देगा ।

तब ज्ञानी बोले— 'मनुष्यरूपेण खराश्चरंति' अर्थात्—पापी गधेके समान है ।

तब विद्वान् बोला—

शीतोष्णं नैव जानाति, सर्वभारं वहेदिव ।
तृणभक्ष्येण सन्तुष्टः, सदा क्षिप्रोज्वलाननः ॥ ७ ॥

गधा शीत उष्णताकी पीडाको समभावसे सहन करता है, सब प्रकारके भारको ढोता है, तृणादिक भक्षण कर सन्तुष्ट होता है । शुभ शकुन वाला होनेसे उज्वल मुखी है, अधर्मीकी उससे उपमा नहीं दी जा सकती है ।

ग्रंथकारोंने ऐसे अनेक दृष्टांत देकर अधर्मी मनुष्यकी नीचताका वर्णन किया है । सारांश यही है कि पापी मनुष्यके समान संसारमें और कोई नीच वस्तु नहीं है, सबसे नीच पुरुष अधर्मी ही है।

हे भव्य जीवो ! जिस मनुष्यदेहकी प्राप्तिके

लिए स्वर्गवासी देव भी सदा प्रार्थना करते हैं, जिस शरीरमें बडे अवतारिक पुरुष जन्म लेकर सुरेंद्रके पूज्य हुए हैं, जिस शरीरकी प्राप्तिसे संसार का अन्त होकर मोक्षकी प्राप्ति होती है, ऐसे परमोत्तम शरीरको अन्य दृष्टान्तों द्वारा नीच बताना अधर्मका ही फल है। यह विचार स्वयमेव अपने हृदयमें करना चाहिये तथा इस नरदेहको दुष्ट कर्मोंमें फँसाकर व्यर्थ न गमाना चाहिये। जिस उद्देश्यसे शरीरकी प्राप्ति हुई है उसकी सिद्धि कर लेना ही सत्पुरुषोंका लक्षण है।

मनुष्य जन्मका कर्तव्य

"धर्मो विशेषः खलु मानुषाणां" अर्थात् मनुष्य जन्म प्राप्त होनेका मुख्य कर्तव्य "धर्म करना है"

धर्मका महत्व

यहांपर यह प्रश्न होता है कि धर्ममें ऐसा कौनसा गुण है जिससे उसे इतना महत्व दिया गया है। इसका उत्तर एक ग्रंथकारने निम्न भांति दिया है।

धर्मोऽयं धनवल्लभेषु धनदः कामार्थिनां कामदः ।
सौभाग्यार्थिषु तत्प्रदः किमपरः पुत्रार्थिनां पुत्रदः ॥
राज्यार्थिष्वपि राज्यदः किमथवा नानाविकल्पैर्नृणाम् ।
तत्किं यन्न ददाति वांच्छितफलं स्वर्गापवर्गावधि ॥

धर्म-धनकी इच्छा करनेवालेको धन देता है, कामार्थी मनुष्यकी कामना पूर्ण करता है, सौभाग्य की इच्छा करनेवालेको सौभाग्य देता है, पुत्रहीन को पुत्र देता है, राज्यकी अभिलाषावालेको राज्य देता है, किंबहुना स्वर्ग और मोक्ष जो कुछ वह सब एक धर्म करनेसे ही प्राप्त होता है, इसलिए सबसे श्रेष्ठ अत्युत्तम एक धर्म ही है ।

संसारके सम्पूर्ण प्राणी एक सुखकी इच्छा करते हैं, वह सुख धर्म ही से प्राप्त होता है, ऐसा जानकर धर्मको सेवन करना चाहिये, परन्तु ऐसा धर्म कौनसा है? जिसके द्वारा सुखकी प्राप्ति हो सके। इस कलियुगमें धर्मका मूल एक होनेपर भी उसमें अनेक मतभेद होगए हैं। और सब मतवाले अपना ही मत श्रेष्ठ बतानेकी चेष्टा करते हैं। जिससे स्वल्प बुद्धि लोग उनकी बातोंको सुनकर गडबडीमें

पड जाते हैं। समझ नहीं सकते कि कौनसा धर्म अच्छा है? किसका कहना माना जाय? इस संशय को दूर करनेके लिए यहां शास्त्राधारसे निर्णय करना उचित है ।

धर्मके साधन

अहिंसा सत्यमस्तेयं । शौचमिंद्रियनिग्रहः ॥
दानं दया दमः क्षान्तिः । सर्वेषां धर्मसाधनम् ॥
(याज्ञवल्क स्मृति)

अर्थ—१ अहिंसा-संसारके सम्पूर्ण त्रस और स्थावर जीवकी हिंसा (वध) किसी प्रकार न करना और आत्मघात भी न करना ।

२ सत्य—जो बात जिस प्रकार सुनी समझी और जानी हो, उसे उसी भांति न्यूनाधिकता रहित सबको सुखदायक और हितकारी वचन बोले वह सत्य ।

३ अस्तेयं अचौर्य-सचेतन्य (मनुष्य पशु आदि) पराई वस्तुको विना उसके मालिककी आज्ञाके न लेना यही अचौर्य है । अचेतन्य (वस्त्राभूषण स्थान तृण काष्ठादि)

४ अशौच—स्वच्छता* बाह्य (प्रगट) सप्त दुर्व्यसन (ठगाई, ईर्ष्या, मदान्धता, परपरिणति, परिणमता, विना कारण संचय, मिथ्यावर्तन, अनाचरण) का त्याग करना और अशुचि पदार्थोंसे दूर रहना यह बाह्य शुचि है । और क्रोधादिक छह शत्रुओंको अंतःकरणमें प्रवेश न करने देना सो आंतरिक स्वच्छता है ।

५ इंद्रियनिग्रह—श्रोत्रेन्द्रिय (कान)के विषयोत्पादक राग रागनीय कथादि सुननेसे रोक कर धर्मकथा श्रवण करनेकी तरफ लगाना, चक्षुरिंद्रिय [आंख] को विषयोत्पादक रूप तथा नाटकादि निरीक्षण करनेसे रोक कर साधु सत्पुरुषोंके दर्शनमें लगाना घ्राणेंद्रिय (नाक) को सुगंधित पदार्थोंकी ओर न ले जाकर परमात्माको नमन करनेमें लगाना, रसनेंद्रिय (जिह्वा) को अभक्ष्य भक्षण करने तथा बुरे शब्द बोलने से रोक कर गुणियोंके गुणकीर्तनकी ओर

---

* श्लोक—अशुचिः करुणाहीनं, अशुचिर्नित्यमैथुनं ।
अशुचिः परद्रव्येषु, परनिंदाशुचिर्भवेत् ॥ १ ॥

लगाना तथा स्पर्शेन्द्रिय [शरीर] को विषय भोगोंमें न लगाकर तपश्चर्यामें लगाना, इस प्रकार पांचों इंद्रियको कुकर्म से रोक कर धर्मकी ओर लगाना इंद्रियनिग्रह है ।

६ दान—दूसरेको कोई वस्तु देनेका नाम दान है। जिस प्रकार किसान अच्छी भूमि देखकर उसमें बीज बोता है, उसी प्रकार दानीको भी सत्पात्र देखकर दान करना चाहिये, जहां अनाथ अपंगोंकी रक्षा हो वहां दान देना चाहिये ।

७ दया—सब जीवोंकी रक्षा करना और दुःख से पीडित जीवको देखकर मनमें खेद उत्पन्न होवे तथा यथाशक्ति सहायता करके उसके दुःखको दूर करना सो दया धर्म है ।

८ दम—अपनी आत्माको जो अनादि कालसे कर्म संयोगवश कुमार्गमें पड़ा है उसे उस मार्गसे रोक कर सद्धर्मकी तरफ लगाना, जैसे कि ध्यान मौन, दुष्कर तप, पूर्ण ब्रह्मचर्य, त्याग, व्रतादि धारण करना यह दम है ।

९ क्षान्ति— क्षमा करना अर्थात् किसीने अपना अपराध किया हो उस पर क्रोध न करना जो होनहार था वह होगया इत्यादि विचार कर क्षमा करना सो क्षमा है।

उक्त ९ कर्तव्य धर्मसाधन करने या आत्मोद्धार करनेके बताए। उनका आचरण करना पालना सो ही धर्म है।

सब मतके शास्त्रोंसे धर्मका स्वरूप

जैनधर्मके सुयगडांग शास्त्रके प्रथम श्रुतस्कन्ध प्रथम अध्यायके चौथे उद्देशेकी १० वीं गाथामें कहा है।

गाथा—एयं खु णाणिणो सारं जं ण हिंसइ किंचणं।
अहिंसासमयं चेव, एतावत्तं वियाणीया॥

अर्थात्—ज्ञान प्राप्त होनेका सार यही है कि किंचित् मात्र किसी भी जीवकी हिंसा नहीं करना ऐसा यह अहिंसाधर्म सर्वमान्य है।

दशवैकालिक शास्त्रके आदिमें ही ऐसा कहा है—

गाथा—धम्मो मंगलमुक्किट्ठं। अहिंसा संजमो तवो॥
देवावि तं णमंसंति। जस्स धम्मे सया मणो॥

अर्थ अहिंसा संयम और तप रूप धर्म है सो सब धर्मोंसे उत्कृष्ट अत्युत्तम-श्रेष्ठ धर्म है, ऐसे धर्ममें जिनका मन सदैव रमण करता है अर्थात् ऐसे परमोत्तम धर्मके जो पालन करनेवाले हैं उन को देवतादिक नमस्कार करते हैं।

हिंदू धर्मके वेद-शास्त्रका मुख्य वाक्य यह है कि

"अहिंसा परमो धर्मः"

अर्थात्—परमोत्कृष्ट धर्म वही है कि जहां किंचित् मात्र हिंसा नहीं होती है। महाभारत शांतिपर्वके १३२ वें अध्यायमें कहा है किः—

अद्रोहः सर्वभूतेषु, कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च, सतां धर्मः सनातनः॥ १॥

अर्थात्—मन, वचन और काय करके किसी भी जीवका द्रोह नहीं करना अर्थात् दूसरेके दुःख प्रद विचार उच्चार व आचारसे दूर रहना और परोपकार करना यही सनातन धर्म है।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ७ अध्याय १४ के श्लोक ९ में कहा है—

मृगोष्ट्रखरमर्कटाखुसरीसर्पखगमक्षिकाः ।
आत्मनः पुत्रवत्पश्येत्, तैरेषामन्तरं कियत् ॥

अर्थ—मृग, ऊंट, गद्धा, बंदर, चूहा, सर्प, पक्षी और मक्खी जैसे ही प्राणीको अपनी आत्मा तथा अपने पुत्रके समान जानना परन्तु किंचित् मात्र भी अंतर (जुदा ही) रखना नहीं। यही सच्चा धर्म है।

पुराणोंके बनानेवाले व्यास ऋषीने १८ ही पुराणोंका सार फक्त आधे ही श्लोकमें कहा है—

अष्टादशपुराणेषु । व्यासस्य वचनं द्वय ॥
"परोपकारः पुण्याय । पापाय परपीडनं" ॥

अर्थात्—परोपकार करना सो पुण्य है और दूसरेको दुःख देना सो पाप है। सब शास्त्रोंका सारांश इतनेमें ही है।

इस्लाम धर्मके अनुयायी मुसलमान लोगोंके परमेश्वरका नाम ही "रहमान रहिम" है, जिसका अर्थ होता है "दयालु ईश्वर" वे कभी भी हिंसा करनेकी दूसरोंको दुःख देनेकी आज्ञा (परवानगी) देंगे क्या ? नहीं कदापि नहीं।

पैगंबर हजरत मोहंमद नबीसाहेबके खलिफा

और जमाइ हजरत अलिसाहेब का फरमान ऐसा है कि—

" फलातज अल्ल बुतूनकुम मकाबरल हयवानात " अर्थात्–तुम पशु पक्षियोंकी कबर तुम्हारे पेटमें मत करो अर्थात् पशु पक्षियोंका वध कर के खाओ मत, ऐसा ही एक फारसी बेत में भी कहा है

न साजी मका में शिखमरा तु गोर ॥
जे बेहरे वहायन जे बेहरे तुयूर ॥

अर्थात्—पशु पक्षीयोंकी कबर तुम्हारे पेटमें करना नहीं। मय खुर्रो मुसहफ वेसाजो आतश अन्दर काबा वेजन साकीने बुतखाना बाश मगर मरदुम आजारी मकुन।

अर्थात्—शराब पी, कुरानको जला डाल और काबे में आग लगादे परन्तु कभी भी किसी भी प्राणी को दुःख देना नहीं।

पारसी धर्मशास्त्र " शाहनामा " मे फर्दोशिने लिखा है कि:—

नास्ति अन्द खुरोने जानवरज्यु ॥
यनीन अस्त दीने अर दुरूतनेकु ॥

अर्थात्—हमारा " जर थोस्ती " धर्म ऐसा नेक (अच्छा) है कि इसमें पशु का वध, भक्षण और शिकार भी करना नहीं है।

जर थोस्त नामे में लिखा है कि—

बकुशतन नीयादंर कसकु दरेह ॥
न आगुस फन्दाके बासद बरेह ॥

अर्थात्—छोटा तथा बडा बच्चा तथा वृद्ध इत्यादिक कैसे ही व कौन से ही प्राणी का भी घात नहीं करना।

ख्रिस्ती धर्म के बाइबिल शास्त्र के २० वें प्रकरण में ' मोजिस ' नाम के धर्मगुरुने निम्नोक्त प्रकार हित शिक्षा दी है—

THOU SHALT NOT KILL

अर्थात्—तू हिंसा करना नहीं.

Animals are not to be slighted.
(Bible Eccls iii 18, 19, 20 and 21.)

अर्थात—जीव की हिंसा नहीं होनी चाहिये-बाइबिल

हुसीया (Hosia) शास्त्र के ८ वें अध्यायकी १५ वीं आयतनः—

And when ye spread forth your hands.
I will hide mine eyes from you yes.

When ye make many prayers, I will not, hear your hands are full of Blood.

अर्थात्---जिस वख्त तुम प्रार्थना करने के लिये मेरी तरफ ऊंचे हाथ करोगे उस वख्त में मेरी आखों तुम्हारी तरफ से फिराकर दूसरी तरफ लगाऊंगा, और तुम प्रार्थना पर प्रार्थना करोगे तो भी मैं उसको स्वीकार नहीं करूंगा क्यों कि तुम्हारे हाथ जीवहिंसाके खून से अपवित्र हुए हैं।

उक्त प्रकार प्रायः सब धर्म के शास्त्रों का उपदेश "अहिंसा" (सब प्राणीयों की दया करना ये ही) धर्म है, यह निश्चयात्मक जानना।

" प्राणी के प्रकार।

शास्त्र में प्राणी ६ प्रकार के कहे हैं यथा—

पुढवी, आऊ, तेऊ, बणास्सइ, तस्स-जैन धर्म;

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके॥
ज्वालामालाकुले विष्णुर्विष्णुः सर्वजगन्मयः॥

(विष्णुपुराण)

अर्थात्—१ मट्टी, २ पाणी ३ अग्नि, ४ वायु ५ वनस्पति, और ६ त्रस, (हलते चलते जीव)

इन ६ प्रकार के प्राणियों की हिंसा नहीं करना, संरक्षण करना उस ही का नाम अहिंसा [दया] है और यही धर्म है ।

धर्म के भेद

उक्त ६ ही प्रकार के प्राणियों का सब लोगोंसे समान संरक्षण होना बहुत कठिन है इसलिये धर्म के दो विभाग किए हैं यथा—

१ सागारी धर्म-अर्थात् गृहस्थावस्था में रह कर संरक्षण करना, सो और २ अनगारी धर्म-संसार के कर्मोंका त्यागकर साधु होकर संरक्षण करना सो,

साधु धर्म ।

जिन महान् पुरुषों ने साधुवृत्तिको स्वीकार किया है उनका शरीर अपनी आत्मा को उद्धार करके अनेक संसारी प्राणियों का उद्धार करने के लिये ही हुआ है । वे साधु उक्त ६ ही प्रकार के प्राणीयों की किंचित् मात्र भी हिंसा करते नहीं, झूठ बोलते नहीं हैं, चोरी करते नहीं हैं, अखंड ब्रह्मचर्य पालते हैं, और किंचित् परिग्रह-द्रव्य

[धातु मात्र] रखते नहीं, ऐसे पंचमहाव्रत पालते हैं, रात्री को कुछ खाते पीते नहीं गाडी घोडे रेल आदि किसी भी वाहन पर बैठते नहीं हैं, बिना कारण मर्यादा उपरान्त एक स्थान पर रहते नहीं हैं, गृहस्थ के द्वारा अपना कोई भी काम कराते नहीं, मर्यादा उपरान्त पात्र भी नहीं रखते हैं, इत्यादि अनेक कठिननियमों का पालन करते हैं। परन्तु इसका शरीर का रक्षण किये बिना स्वात्मा तथा परात्माका उद्धार नहीं होता है इसलिये शरीर का संरक्षण करने के लिये श्वेत वस्त्र, आहार वगैरा जो चाहिये सो निरवद्य (किसी को भी दुःख नहीं होवे ऐसी) वृत्ती से ग्रहण करके शरीर का निर्वाह करते हैं !

जैसे शौकीन लोग अपने आराम के लिये फूलों का बगीचा लगाते हैं, वहां अविचिन्त्य भ्रमर आकर उन फूलों को किंचित् भी दुःख नहीं होवे इस प्रकार रस ग्रहण करके अपनी आत्मा को तृप्त करता है, उसी प्रकार गृहस्थ ने अपने शरीर के

व कुटुम्ब के पालन करने के लिये स्थान, वस्त्र, तथा आहार बनाया है वहां अविचिन्त्य जाकर उनको दुःख नहीं होवे उस प्रकार उसमें से कुछ भाग ग्रहण कर के अपने शरीरका साधु पोषण करते हैं। और ज्ञान, ध्यान, तप, संयमसे स्वात्मा का और सद्बोध करके परात्मा का उद्धार करते हैं वे ही सच्चे साधु हैं।

गृहस्थका धर्म

उक्त साधुवृत्तिसे गृहस्थाश्रमका निर्वाह होना बहुत मुश्किल है, क्यों कि मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति इन पाचोंका आरम्भ करने का सदैव प्रसंग प्राप्त होता है, इसलिये उक्त ६ प्रकार के प्राणीयों में से अन्तिम जो त्रस (हल चलने फिरने वाले) प्राणी हैं उनका वध नहीं किया जाय तो संसार के किसी भी काममें किसी भी प्रकार की काठिनाई नहीं होती है, इसलिए त्रसप्राणीको वध करनेका शास्त्रोंमें महापातक बताया है!

हिंसक को दंड ।

यावन्ति पशुरोमाणि । पशुघातिषु भारत ! ॥
तावद्वर्षसहस्राणि । पच्यंते नरके नराः ॥
—अनुशासनपर्व, ॥

अर्थात्—जिस पशुका जो वध करेगा उस पशुके शरीर पर जितने बाल होंगे उतने ही हजार वर्षतक उसको नरककी शिक्षा भोगनी पडेगी ।

स्वल्पायुर्विकलो रोगी । विचक्षुर्बधिरः खलु ।
वामनः पामरः षंढो । जायते स भवे भवे ॥

अर्थात्—हिंसाको करने वाला आगे को भवोभव में अल्पआयुषी, मूर्ख, रोगिष्ट, अन्धा, बहिरा, ठिंगणा, और कुष्टादि अनेक रोगों करके पीडित दुःखी होता है । एक जन्ममें की हुई हिंसा जन्मो जन्म में दुखदाता होती है । इसे कभी भूलना नहीं ।

क्षुद्र प्राणियोंका रक्षण ।

कितनेक अधर्मी लोग कहते हैं कि–युंका (ज्यूं) षट्मल बिच्छू, सांप वगैरा क्षुद्र दुःख देनेवाले प्राणीयोंको मारनेकी भगवान् की आज्ञा है । और वे ही यह कहते हैं कि भगवान्ने सृष्टी

उत्पन्न की है। अब जरा विचार करो कि (१) अपनने कोई चीजको बनाई उसको कोई दूसरा खराब करे अथवा उसका नाश कर डाले तो अपन को क्रोध आता है कि–इसने मेरा अपमान किया तथा मेरा परिश्रम निरर्थक किया। इसी प्रकारसे जो भगवान् के परिश्रमको अनुपकारी मानता है या निरर्थक गमाता है उस मनुष्यको कैसा दुष्ट कहना चाहिये?

(२) जो प्राणी तुम्हारेको दुःख देता है उस को तुम क्षुद्र कहकर मारते हो, जब तुमने उसको मार डाला तो तुम उससे भी ज्यादा महाक्षुद्र हुए कि नहीं? फिर तुम्हारेको कौन छोडेगा?

(३) ❀ जैसे मनुष्यके शरीर सम्बन्ध कर पुत्रकी उत्पत्ति होती है वैसे ही शरीर पर वस्त्र रहा तो युंकाकी उत्पत्ति होती है और घरमें मनुष्य रहा तो खटमल की उत्पत्ति होती है। फिर पुत्रका पालन करना और ज्युं खटमलको मार डालना यह कितना जबर अन्याय?

(४) यदि पुत्र कुपुत्र हुआ तो भी पिता उस की गरदन काटता नहीं, विशेष क्रोध आया तो उसको घरके बाहर निकाल देता है। उसी मुजब यदि उन जीवोंका दुःख अपनेसे सहन नहीं हुआ तो उनको यत्नसे ग्रहण कर सुखस्थानमें रख दो क्योंकि वे कुछ पक्षी नहीं हैं कि जो उड़कर पीछे घरमें आजांयगे? परन्तु उनको मारकर घातक क्यों बनना चाहिये अर्थात् मारना उचित नहीं है।

(५) अधर्मी लोग सांपको क्षुद्रप्राणी कहते हैं और वे ही उसको देव मानते हैं, सर्पने अपना शरीर सेवार्थ श्री विष्णुको समर्पण कर शैय्यारूप बना है। श्री शंकरने सर्पको मायारूप मानकर अपने गलेका भूषण बनाया है। इसलिए हर नागपंचमी के दिन सर्पका पूजन करते हैं, दुग्ध पान कराते हैं, जो कभी सच्चा सर्प नहीं मिला तो पत्थरका तथा चित्रका सर्प बनाकर उसकी पूजा करते हैं। अब देखिए, पत्थरके तथा चित्रके सर्पकी तो पूजा करते हैं और सच्चे सर्पको मार डालते हैं, क्या उस

सर्पसे सच्चा सर्प खराब हो गया? ऐसे पूज्यप्राणी को क्षुद्र मानकर मार डालना यह कितना अधर्मपनेका कर्तव्य है।

(६) अपनको किसीने गाली दी तथा अपमान किया तो अपन भी फिर उसकी तरफ वैसा ही करते हैं, तैसे ही सांप तथा बिच्छूओंको दूसरोंसे धक्का लगा तो वे दंश करेंगे—काटेंगे, क्यों कि उनके पास वही उपाय है। जो ज्ञानी होकर भी क्षमा नहीं करता है तो वे तो अज्ञानी प्राणी हैं वे क्षमा किस प्रकार कर सकेंगे? और पहले अपनेसे उसको धक्का लगा तब उसने अपनको काटा, इसलिए प्रथम स्वयं गुन्हेगार हुए। अपने गुन्हाकी उसने अपनेको शिक्षा दी, फिर उसको मार डालना यह कितनी अनीतिका काम है। ऐसा देखा है कि शरीरके ऊपरसे सर्प बिच्छू निकल जाते हैं, लेकिन उनको धक्का नहीं लगता है, तो वे भी उनको काटते नहीं। भाइयों जरा नीतीसे चलो आगे बदला देना पडेगा? जरा डरिये, जो अपनी मृत्यु ही उसके संबंध

से होनेवाली होगी तो क्या उसके मारनेसे टल जायगी ? कदापि नहीं यह निश्चयसे समझना । जिस जिस समय जो जो दुःख तथा सुख भोगनेका होगा उस उस समय वह २ भोगना ही पडेगा, फिर उसकी घात करके दोषी क्यों बनना ?

(७) कुम्हारने मृत्तिकाका घडा बनाया और उसको कोई फोड डाले तो वह अपनी मिहनतका बदला लिए विना उसको छोडता नहीं है, फिर जो ईश्वरको उस प्राणीका बनानेवाला कहते हो तो ईश्वर तुम्हारेसे बदला लिए विना कैसे छोडेगा ? जरा विचार करो ! और ऐसे अकृत्यसे अपनी आत्माको बचाओ ।

इन सात उदाहरणोंका अंतःकरणमें विचार करके समझना चाहिये कि (१) क्षुद्र प्राणीको भी मारनेकी ईश्वरकी आज्ञा नहीं है ❀ (२) धर्म भी नहीं है, (३) अनीति व पाप है, (४) कुछ

* देखो-श्रीमद्भागवत के ७ वें स्कन्धके १४ वें अध्यायका ९ वां श्लोक ।

फायदा भी नहीं है, और (५) उसके खूनके बदले तुह्मारा खून देना पडेगा, ऐसा निश्चय विचार करके धर्मेच्छु प्राणीको किसी प्राणीका वध नहीं करना ऐसे (सौगंद) नियम धारण करना चाहिये।

जीवरक्षाका पुण्य

एकतः काञ्चनो मेरुः, बहुरत्ना वसुंधरा।
एकतो भयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणं॥

अर्थात्—एक जीवकी रक्षा करनेवालेका पुण्य सुवर्णका मेरुपर्वत जितना ढेरका तथा पृथ्वी भर-कर रत्नोंका पुण्य करनेसे भी अधिक है? देखो? दानसे भी दयाका कितना बडा महत्व है!!

मांसाहारी लोगोंके प्रश्नोंका समाधान

कितनेक मांसाहारी लोग कहते हैं कि—बकरे मुर्गे वगैरा प्राणी ईश्वरने हमारे खानेके लिए ही उत्पन्न किए हैं, और लिखा भी है कि "जीवो जीवस्य जीवनम्" अर्थात् जीवोंका जीव भक्ष्य है। समाधान-ऐसे अर्थ करना ही स्पष्ट अज्ञानता है क्यों कि, प्रथम तो ईश्वरने किसीको उत्पन्न ही

नहीं किया है विचारो ! [अ] न्यूनता विना इच्छा नहीं होगी, [आ] विना इच्छाके कोई भी कुछ करता नहीं है, [इ] इच्छा है वही दुःख है, [ई] कार्य करना वह कर्म है, [उ] कर्मके फल अवश्य भोगने पडते हैं और यह दुर्गुण ईश्वरको लागू नहीं होते हैं क्यों कि [अ] ईश्वरमें कुछ न्यूनता नहीं है, [आ] इसलिए उनको किसी कार्य करनेकी इच्छा ही नहीं होती है, [इ] वे तो परमानन्दी परमसुखी हैं, [ई] कर्म करते भी नहीं हैं और [उ] उनको भोगनेको उनकी पुनरावृत्ति (जन्म धारण करना) होता नहीं है, वे ही सच्चे ईश्वर हैं । प्राणी जैसे २ कर्म करता है वैसी २ योनिमें जन्म लेता है इसलिए किसीके भक्षण करनेको कोई उत्पन्न नहीं हुआ है + । अच्छा जैसे तुम्हारे खानेके लिए

+ सुखस्य दुःखस्य न कोपि दाता, परो ददातीति कुबुद्धिरेषा ।
पुराकृतं कर्म तदेव भुज्यते, शरीरकार्यं खलु यत्त्वया कृतम् ॥
चाणक्य अ० ८ श्लोक ५

अर्थ—सुख दुःखका कोई देनेवाला नहीं है, पूर्वकृत कर्मानुसार जीव सुख दुःख भोगते हैं ।

बकरे, मुर्गे वगैरा उत्पन्न किए हैं तैसे ही तुमको खानेको सिंह, बाघ, चीता इत्यादि प्राणीको भी उत्पन्न किए होंगे। क्यों कि उनको मनुष्यका मांस बहुत अच्छा लगता है, वे जिस वक्त तुम्हें खाने को आते हैं तब तो तुम उनको देखकर बापके बापको पुकार कर भागते हो, जिस प्रकार तुम्हारे प्राण तुमको प्यारे हैं तैसे सब प्राणियोंको अपने २ प्राण प्यारे हैं, विष्णुपुराणमें कहा है कि—

यथात्मनः प्रियाः प्राणास्तथा तस्यापि देहिनः ।
इति मत्वा न कर्तव्यो, घोरप्राणिवधो बुधैः ॥

अर्थात्—जैसे अपने प्राण अपनेको प्यारे हैं, तैसे ही सब प्राणियोंको आप आपके प्राण प्यारे हैं, ऐसा जानकर अहो विद्वानो! किसी भी प्राणी का वध कभी भी नहीं करना ।

"जीवो जीवस्य जीवनम्" ऐसा जो लिखा है वह सच्चा है, परंतु उसका सच्चा अर्थ समझाना

अरबी शेर—ऐसाकी मुजरक बजात मुतसर्रफनाइल्लात ॥

अर्थ—चैतन्य दरयाफत करनेवाला है, अपने आपसे कबजा रखनेवाला है साथ औजारके ।

चाहिये । और "जीवो जीवस्य जीवनम्" अर्थात् जीव जीवका जीवन है, मतलब कि, एक जीवसे दूसरे जीवको सहायता—सहारा पहुंचनेसे उसका निर्वाह होता है। जैसे मनुष्यको ज्ञान है वह पशु का पालन करने, रहनेको एक जगह, खानेको दाना, चारा, पीनेको पानी वगैरा देता है, और कितनेक काम ऐसे हैं कि उसमें मनुष्यको पशुकी सहायता की जरूरत पडती है। और वे पशु उसके काममें सहायता करते हैं, जैसे दूध, दही, मावा, मक्खन और तक्र (छाछ) ये पशुसे ही प्राप्त होती रहती हैं जिसको बालकसे बुढ तक और गरीबसे श्रीमान् तक चारों वर्णके लोग व यवनादि (मुसलमान) एक समान उपयोग करते हैं। पशुके शरीरसे ही ऊन प्राप्त होती है जिसके कम्बल दुशाले आदि उत्तम वस्त्र होते हैं, खेतोंमें हल वखर आदि खीचनेमें कूप आदि में चडसादिकसे पानी निकालनेमें पशु ही सहायक होते हैं। खाई, पहाड आदि दुर्गमस्थानोंमें मालमत्तादि पशुओंकी सहायतासे

पहुंचा सकते हैं, मच्छ कच्छादि पानीमें रहकर पानीको स्वच्छ आरोग्य रखते हैं। पक्षी अपने पंखों द्वारा वायुको आरोग्य बनाते हैं, पशुके गोवरसे घरकी स्वच्छता होती है इत्यादि अनेक काम जगत्‌के ऐसे हैं कि जिसमें पशुकी सहायताकी आवश्यकता पडती है। इसलिए ये ही कहा है कि "जीवो जीवस्य जीवनम्" जो जीवका जीव भक्षण होता तो ऐसा लिखा होता कि—"जीवो जीवस्य भोजनम्" इस प्रकार अर्थका अनर्थ करके मतलबी मनुष्य भोले लोगोंको भ्रममें फँसाकर डुबाते हैं।

सुज्ञो! जरा दीर्घ दृष्टिसे विचार करके देखो कि, मनुष्य मांसाहारी है ही नहीं,इससे संसारमें प्राणी-योंका वर्ग दो प्रकारका होता है यथा—मांसाहारी और घास (वनस्पति) आहारी जो पशु मांसाहारी हैं उसके अवयव ही अलग प्रकारके होते हैं वे शस्त्रादिके सहाय विना ही भक्षप्राणीका वध करके कच्चे मांस ही का भक्षण करते हैं, और वह उनको पाचन भी हो जाता है, मांसाहारी पशु पानीको

चाटकर पीते हैं, और जो घास आहारी पशु हैं वे पानीको मुंह लगाकर पीते हैं। इसमें मनुष्य प्राणीके अंग मांसाहारी जैसे नहीं हैं। बिना शस्त्र व अग्नि-संस्कार विना यह पाचन होता नहीं है। मांस भी अनेक रोग उत्पन्न करता है। विद्वान् अंग्रेज डॉक्टरोंका कहना है कि, Starch Sugar (स्टार्च-शुगर) नामका पदार्थ मांसमें नहीं होनेसे Scurvy (रक्तपित्ती) का रोग उत्पन्न होता है और "मिट् फिवर" एक प्रकारका बुखार मांस भक्षण करनेसे आता है, इत्यादि विचारोंसे स्पष्ट मालूम होता है कि मनुष्य मांसआहारी नहीं है। जो प्राणी मांसआहारी हैं वे घास नहीं खाते हैं और घास आहारी हैं वे मांस नहीं खाते हैं। पशु होकर भी नियमका पालन करते हैं और मनुष्य नहीं करते हैं, उन मनुष्योंको मनुष्य किस प्रकार कहना! अर्थात् वे "अतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट" राक्षसरूप हैं।

कितनेक कहते हैं कि—सीधा-निर्जीव मांस बिकता हुआ ग्रहण करते हैं, हम हमारे हाथसे हिंसा

नहीं करते हैं इसलिए हमें पाप नहीं लगता है। यह भी उनका कहना नीति विरुद्ध है, क्यों कि मनुस्मृतिशास्त्रके पांचवे अध्यायके तीसरे भागमें ऐसा कहा है—

अनुमन्ता विशसिता। निहन्ता क्रयविक्रयी॥
संस्कर्ता चौपहर्ता च। खादकश्चेति घातकः॥ १॥

अर्थात्—१ प्राणी को मारने की आज्ञा देने वाला २ शस्त्र देनेवाला, ३ मारनेवाला, ४ ग्रहण करनेवाला, ५ बेचनेवाला, ६ पकानेवाला; और ७ खानेवाला यह सातों ही घातक होते हैं। कहिये अब तुम्हारा छुटकारा किस प्रकार होगा?

और भी इस ही मनुस्मृतिशास्त्र में मांसका अर्थ ऐसा किया है कि—मां=मेरे+से=सरीखे, अर्थात् जैसे तू मेरा हाल करता (खाता) है तैसे ही मैं तेरे हाल करूंगा।

अहो मांस भक्षक हिंदुओ! तुम्हारे घरमें मनुष्य मर जाता है उसको स्मशानमें लेजाकर जलाते हो स्नान किए विना घरमें नहीं खाते हो, और बारह

दिनतक सूतक पालते हो! अब जरा विचार तो करो बकरा, मुर्गा वगैरा प्राणीको घरके आंगनमें मार कर घरमें चूल्हेपर पकाकर खाते हो उसका सूतक कितने दिनका? विष्टाको देखकर थूः थूः करते हो रक्तका दाग लगा तो धो डालते हो और विष्टा नरकसे भरे हुए मांसके टुकडेको खाते समय किसी प्रकार घृणा [सूंग] आती नहीं है।

यज्ञमें भी हिंसा नहीं करना

कितनेक लोग कहते हैं कि यज्ञका मांस तथा मंत्रसे पवित्र किया गया मांस पवित्र होता है। उसके भक्षण करनेमें दोष नहीं है, यह उनका कहना राक्षस जैसा है। महाऋषिका कहना है।

देवोपहारव्याजेन, यज्ञव्याजेन येऽथवा ॥
घ्नन्ति जन्तून् गतघृणा, घोरांते यान्ति दुर्गतिम्॥

अर्थ—जो घृणा (ग्लानी) रहित पुरुष हैं वे देवताके भेट करनेरूप छलसे अथवा यज्ञ करके जीवों को मारते हैं, वे घोर दुर्गति [नरक] में जाते हैं, और वेदान्तिक भी कहते हैं कि:—

अन्धे तमसि मज्जमाः पशुभिर्ये यजामहे ॥
हिंसा नाम भवेद्धर्मो, न भूतो न भविष्यति॥

अर्थात्—जो हम पशुओं से देवतादिक की पूजा करें तो अन्धतम (नरक) में डूब जावें, क्यों कि हिंसामें धर्म न कभी हुआ और न कभी होगा।

पहिले त्रेतायुगमे मांस भक्षण करनेवालेको राक्षस कहते थे, ऐसा "ब्रह्मबोध" ग्रन्थमें लिखा है और भी श्रीमद्भागवतके स्कन्ध ७ के १४ अध्याय में कहा है कि "प्राचीन बर्हीं" नामके राजा गुरुओं के उपदेशका अनुकरण करके यज्ञमें अनेक पशुओं को होम डाले, यह जानकर नारद ऋषि उसका उद्धार करनेको आकर कहने लगे।

भो भो प्रजापते राजन्, पशून् पश्य त्वयाऽध्वरे ।
संज्ञापिता जीवसंघान, निर्घृणेन सहस्त्रशः ॥ १ ॥
एते त्वां संप्रतीक्षन्ते, स्मरंतो वैशसं तव ।
संपरे तमयः कूटैः छिंदन्त्युत्थितमन्यवः ॥ ८ ॥

अर्थात्—हे राजा! तूने यज्ञमें हजारों पशुओंका वध किया है, वे सब पशु तेरी मार्ग प्रतीक्षा करते हैं—रास्ता देखते हैं, क्यों कि जिस प्रकार तूने उन

को मारे हैं, तेरे मरनेके बाद वे भी तुझे इस ही प्रकार मारनेंको तैयार हो रहे हैं। ऐसा कहकर नारद ऋषिने उस राजाको पशु भी बताए, उनको देखकर राजा भयभीत हुआ। तब नारद ऋषि ने कहा कि इस पापसे मुक्त होनेके लिए अब तू इस पापयज्ञको त्याग कर धर्मयज्ञ कर—यथा—

ज्ञानपालिपरिक्षिप्तब्रह्मचर्यदयाम्भासि ॥
स्नात्वातिविमले तीर्थे पापपंकापहारिणि ॥ १ ॥
ध्यानाग्नौ जीवकुंडस्थे दममारुतदीपिते ॥
असत्कर्मसमित्क्षेपैरग्निहोत्रं कुरूत्तमम् ॥ २ ॥
कषायपशुभिर्दुष्टैर्धर्मकामार्थनाशकैः ॥
शममन्त्रहुतैर्यज्ञं विधेहि विहितं बुध ! ॥ ३ ॥

अर्थात्—ज्ञानरूप तालाबमें गिरा हुआ ब्रह्मचर्य और दयारूप पानी ऐसे तीर्थमें स्नान कर पापरूप कर्दमको दूर कर निर्मल बन, फिर जीवरूप कुंडमें दमरूप पवन कर प्रदीप्त ऐसी जो ज्ञानरूपी अग्नि है उसमें अष्टकर्मरूपी काष्ठको डालकर उत्तम अग्निहोत्र करो। धर्म, काम और अर्थके नष्ट करने वाले शमरूपी मंत्रकी आहुतिमें प्राप्त हुए ऐसे दुष्ट

कषाय [क्रोध, मान, माया, लोभ] रूपी पशुओंसे ज्ञानके बानों द्वारा किए हुए यज्ञ करो, तथा अश्वमेध सो मनरूप नकरेको और नरमेध सो कामरूप नरको उक्त प्रकार यज्ञ (हवन) करनेसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इत्यादि बोध सुनकरके प्राचीन वहाँ राजाने पापयज्ञका त्याग करके धर्मयज्ञको स्वीकार किया। इससे ऐसा ज्ञात होता है शास्त्रमें जीववध करनेकी आज्ञा बिलकुल नहीं है, परंतु कितनेक लोग वेदकी श्रुतियोंका अर्थ पशुको अग्निमें जलानेका करते हैं। यह अर्थ जो सच्चा होता तो वर्तमानकालके हुए वेदके पारज्ञ स्वामी दयानन्दजी जैसे विद्वान्ने वेदकी श्रुतियोंका अर्थ क्यों न ऐसा किया? इससे खुलासा जाना जाता है कि, रस गृद्धि लोगोंने स्वार्थसाधनके लिए अर्थ का अनर्थ कर डाला है। सुज्ञ मनुष्योंको प्राप्त बुद्धि द्वारा सत्यार्थका विचार कर जो सुशास्त्रोंसे मिलता सच्चा अर्थ हो उसको स्वीकार करना चाहिये, और भी वैष्णव लोग कहते हैं कि ईश्वरने

मत्स्यावतार, कूर्मा [कच्छा] वतार, बाराहवतार और नरसिंहावतार ऐसे चार अवतार पशु योनिमें धारण किए हैं, अब जरा विचार करो कि जिस योनीमें जिसने अवतार धारण किये हैं उसको मारनेकी क्या वे आज्ञा देंगे ? और जिस योनीमें ईश्वर अवतार धारण किया उस प्राणीका वध करनेवाला व भक्षण करनेवाले अधर्मी मनुष्यकी क्या गति व स्थिति होवेगी ?

यह ऊपर हिंदू धर्मशास्त्रके प्रमाण बताए जिससे निश्चय होता है कि मनुष्योंका मांस आहार करना सो शास्त्रविरुद्ध है, महारोग उत्पन्न करने वाला है, महापातकका काम है, और दोनों लोक में दुःख देनेवाला है।

मुसलमानी धर्मके शास्त्राथसे मांसभक्षणका निषेध

[१] मुसलमानोंका जो " कुरान शरीफ " नामका सबसे बडा और सर्वमान्य शास्त्र है उसमें

भी मांस भक्षण करनेकी साफ मनाई की है, कुरान शरीफकी "सुराअन-अरा" में लिखा है कि—

حریمت علیکمو ل میتا ر د ما و احمل خینزیر و ما
اھلا ے غیرله بے ھی ولمن خیفتو ول موکوزتو
ول موتر د یتو ول ظ یفتو و ما اکل مسما وہ اِله
ما وکیلتم و ما ز و بحا علنصبا و ان تسقمو ابل ا ز
لامے ز الیکم فسقون الیو ما ییس الزینا کفر و من
د ینکم فلا تخشو ھم و خشو نی الیوما اکملتو لکم
د ینکم و اشمتو علکم نعمتی و ر ضیتو لکمل اِسلام
د یماً فمن ضیطر فی مخمصتن غیر ا متخا یفا ے
اِثمر فا اِن له غفو ر و ر حیم

अर्थात्—जिस मांसमें रक्त (लोहू) होवे वह मांस, मरे हुएका मांस, गलेमें फांसी डालकर मरा हो उसका मांस, मूर्तिके नामसे मारा हो उसका मांस शस्त्रके घावसे मरा हो उसका मांस, कहींसे पडकर मर गया हो उसका मांस, और दूसरे प्राणीने मारडाला हो उसका मांस इतने प्रकारका मांस नहीं खाना।

सुज्ञ भ्रातृगणों ! अब कहिये कौनसे प्रकारका

मांस खाना बाकी रहा? वे कहते हैं कि हाथसे गलें पर छुरी फेरकर मारते (हलाल करते) हैं, वह मांस खानेकी हमको परवानगी है, परंतु यह भी कहना उनका असत्य है क्यों कि ऊपर शस्त्रके मारेका मांस खानेकी भी मनाई की है।

(२) और भी देखिये— "सुरा उलमायद" ४ पययरा, २ मंजल, ३ आयतनमें लिखा है कि— "मक्का शरीफ" यह मुसलमान लोगोंका बडा तीर्थ स्थान है उसकी जहांतक हद्द है वहांतक कभी भी किसी भी प्राणिको नहीं मारना और जो कोई भूलकर मार डाले तो उसको अपना पाला हुआ जानवरमेंका एक जानवर वहां छोड देना, अपना पाला हुआ जानवर नहीं होवें तो जिस जानवरको उसने मारा हो उस जानवरकी कीमत जो चार मनुष्य कहें उतने पैसेका अन्न मोल लेकर फकीरोंको बांट देना। मुसलमानोंके ईश्वरने यह काम [मारना] अपवित्र माना है, इसलिए ही ऐसे उत्तमस्थानमें ऐसे नीच कर्म करनेकी मना की है।

(३) इस ही प्रकारसे मुसलमान बंधु बकरा-ईदके दिन बकरोंका वध करते हैं वह भी उनके शास्त्रविरुद्ध है, देखिए— " सुराह हजकी ३६ वीं आयातमें " खुद अल्लाताळाने फरमाया है कि— गोस्त [मांस] और लहू [रक्त] मुझे पहुंचेगा नहीं किंतु एक परहेजगारी [पापका] डर ही पहुंचेगा*

---

* ईदके दिन दुम्बा मारनेका हेतु—इब्राहीम पैगंबरके ईमानकी परीक्षा देखनेके लिए हुक्म दिया कि—"तेरी प्यारी वस्तुको मुझे दे" उस वक्त पैगंबरने अपना एकाएक लडका [पुत्र] इस्माइलको मार डालनेको तैयार हुए, उसे मारनेको हाथ नहीं चला तब अपनी आंखोंपर कपडेकी पट्टी बांधकर अपने हाथमें छुरी लेकर मारने लगे, किंतु उस वक्त पुत्रके स्थान दुम्बा होगया वो मर गया और पुत्र बच गया। (कितनेका कहना है कि दुम्बेको पुनः सजीव कर दिया) उस दिनसे यह रिवाज चालू हुआ है, ऐसा उन्होंने किताबमें लिखा है। सुज्ञ बन्धुओं ! अब आप जरा दीर्घ दृष्टिसे विचार कीजिये कि—अल्लाताळाका मुख्य हेतु क्या था ? पैगंबरकी प्रिय वस्तु मांगी थी कि बकरा मांगा था ? जो अल्लाताळाको बकरा ही प्रिय होता तो बकरा ही मांगा होता, किंतु नहीं सिर्फ परीक्षाके लिए ही यह आज्ञा दी थी और

और भी मुसलमान धर्मके शास्त्रमें लिखा है कि—"कयामतके दिन मरे हुए मनुष्यों और पशु जिन्दे होकर जिस २ को जिस २ ने मारा है अथवा दुःख दिया है उन २ को वे वैसेही मारेंगे और फिर ईश्वर पापी जीवोंको दोजख [नर्कवास] तथा धर्मात्माको बेहिश्त [स्वर्गवास] इस प्रकार उचित इंसाफ कर देवेंगे" इसलिए अहो बन्धु गणों! पापका बदला दिए विना छूटना नहीं होगा, यह समझना।

(५) "आइन अकबरी" किताबमें लिखा है कि अकबर वादशाह हर शुक्रवारसे लगाकर इतवार तक ग्रहणके दिन, तीन दिनके जशनके दिन और सब फरवरदी तथा आबान महीनेमें बिलकुल ही मांस आहार नहीं करते थे, गोस्त नहीं खाते थे।

(६) तैसे ही अभी ४० दिनकी धर्मक्रिया

पैगंबरके पुत्रके रक्षणार्थ ही उस स्थान दुम्बा रक्खा गया था। अब अल्लाताळाके पसंद करनेको ईदके दिन अपनी प्रिय वस्तुको नहीं देते हुए दुम्बा [बकरे] का बध करते हैं यह कहांका न्याय है ?

करते हैं उसे "सिल्लो" ऐसा कहते हैं, उसमें भी मांस भक्षण नहीं करते हैं, पूछनेसे कहते हैं कि गोस्त एक खराब वस्तु है उसको खानेसे बंदगीमें खलल पहुंचता है ।

और जो इस वक्त भी हज करनेके लिए मक्का शरीफको जाते हैं, वहां अपने शरीर पर एक वस्त्र धारण करते हैं, यदि उस वस्त्रमें युंका [ज्युं] निकल गई तो उसको नीचे नहीं डालते हैं किंतु उस ही वस्त्रमें रहने देते हैं ।

उक्त ७ उदाहरणोंसे निश्चयात्मक समझनेमें आया होगा कि इस्लामधर्मके शास्त्रोंमें भी जीव वध करनेकी व मांस भक्षण करनेकी साफ मना है उक्त ७ उदाहरणोंपरसे ही जरा ख्याल करो कि– ऐसे दयामय धर्मकी स्थापना करनेवाले जो ज्युं को भी नीचे नहीं डालना ऐसा उपदेश करनेवाले कभी भी किसी जीवको मारनेकी व मांस भक्षण करनेकी आज्ञा देंगे क्या ? कदापि नहीं, यह निश्चय समझना चाहिये । इसवक्त यह खराब रिवाज प्रत्येक

जातीमें फैला गया है, वह केवल इस लुब्धताके कारणसे ही जानना, सुज्ञ मनुष्यों ! इसका पूर्ण विचार करके ऐसी खराब रूढी जो पड गई है उसको त्याग करके सत्यधर्मको स्वीकार करेंगे ।

त्रसजीवोंके स्वरक्षणके नियम.

रात्रिभोजनका निषेध.

सूर्य अस्त हुए बाद [रात्रिको] अन्न पाणी वगैरा किसी भी वस्तुका सेवन नहीं करना, क्यों कि रात्रिको शीतलता होनेसे जीवोंका गमनागमन बहुत होता है, और अंधकार होनेसे कुछ दीखता नहीं है, दीपकादिकी रोशनीसे तो दीखता है परंतु दिनके जैसा नहीं देख सकोगे और उस प्रकारके योगसे बहुतसे जीव आकर्षित होकर उस भक्ष्य पदार्थमें गिरते हैं, इसलिए रात्रिमें भोजन करनेसे व पानी पीनेसे त्रसजीवोंकी घात अवश्य करके होती है । और भी रात्रि भोजन-पानसे शारीरिक, मानसिक, धार्मिक वगैरा अनेक प्रकारके नुकसान होते हैं । आयुर्वेदमें कहा भी है कि—

हृन्नाभिपद्मसंकोचश्चण्डरोचेरपायतः ॥
अतो नक्तं न भोक्तव्यं सूक्ष्मजीववधादपि ॥

अर्थात्—सूर्य अस्त हुएके पश्चात् हृदयकमल और नाभिकमल संकोच पाते हैं—मूंद जाते हैं, इसलिए रात्रीभोजन करनेसे अनेक रोगोंका उद्भव होता है और सूक्ष्म जीवोंका घात भी होता है।

मेधां पिपीलिका हन्ति । यूका कुर्याज्जलोदरम् ॥
कुरुते मक्षिका वान्तिं । कुष्टरोगञ्च कौलिकः ॥ १ ॥
कंटको दारुखण्डं च । वितनोति गलव्यथाम् ॥
व्यंजनान्तर्निपातितं । तालु विद्धयन्ति वृश्चिकाः ॥२॥

अर्थात्—चींटीका भक्षण करनेसे बुद्धि नष्ट होती है, यूका [ज्यूं] का भक्षण करनेसे वान्ती-कै हो जाती है, मकडीके भक्षणसे कुष्ठ [कोढ] का रोग होता है, कांटेका भक्षण होनेसे गंडमाल-रोग होता है, केस [बाल] आजावे तो स्वरभंग होता है, बिच्छूका कांटा आजावे तो तलवेमें छिद्र पडता है, ऐसे अनेक भयंकर रोगोत्पादक रात्रिभोजन है।

अस्तं गते दिवानाथे । आपो रुधिरमुच्यते ॥
अन्नं मांसं समं प्रोक्तं । मार्कंडेयमहर्षिणा ॥

अर्थात्—महाऋषि मार्कंडेयजी कहते हैं कि-रात्रिमें अन्न मांसके समान व पानी रक्तके समान हो जाता है। इसलिए छोड देना चाहिये।

और भी महाभारत तथा स्कन्धपुराणमें कहा है-

नैवाहुतिर्न च स्नानं। न श्राद्धं देवतार्चनम् ॥
दानं न विहितं रात्रौ। भोजनं तु विशेषतः ॥

अर्थात्—रात्रिको देवताको आहुति भी नहीं दी जाती है, स्नान भी नहीं होता है, श्राद्ध भी नहीं होता है, देवपूजा भी नहीं होती है, दान भी नहीं होता, और खासकर रात्रि-भोजन तो बिलकुल ही नहीं होता है।

और भी महाभारतमें कहा है कि—

ये रात्रौ सर्वदाहारं। वर्जयंति सुमेधसः ॥
तेषां पक्षोपवासस्य। फलं मासेन जायते ॥

अर्थात्—जो रातको बिलकुल ही खाता पीता नहीं है उसको एक महिनेमें १५ उपवासका फल होता है।

बिना पानी छाननेका बडा दोष

भागवतपुराणमें कहा है कि—

सूक्ष्माणि जंतूनि जलाश्रयाणि ।
जलस्य वर्णाकृतिसंस्थितानि ॥
तस्माज्जलं जीवदयानिमित्तं ।
निरग्रशूरा परिवर्जयन्ति ॥

अर्थात्—पानीका आश्रय लेकर अनेक सूक्ष्म जीव उसमें रहते हैं, और उन जीवोंका रंग उन पानीके वैसा ही होता है, इसलिए जीवदयाके निमित्त शूर पुरुष छोड देते हैं, उष्णादि निर्जीव जल ग्रहण करते हैं। उक्त कथनसे स्पष्ट होता है कि पानीमें असंख्य त्रसजीवोंका निवास स्थान है, विना छाना पानी पीनेसे उनका भी पान होता है, इसलिए ही महाभारतमें कहा है कि— "वस्त्रपूतं जलं पिबेत्" अर्थात् वस्त्रसे छानकर पानी पीना ।

और भी महाभारत शास्त्रमें ही कहा है कि—

संवत्सरेण यत्पापं । कैवर्तस्य हि जायते ।
एकाहेन तदाप्नोति । अपूतजलसंग्रहः ॥

अर्थात्—मच्छियां पकडनेवाले धीवर (भोई)

का एक वर्ष में जितना पाप होता है उतना पाप एक ही दिन विना छाना पानी पीनेवालेको लगता है। इसलिए धर्मेच्छु मनुष्यों—

विंशत्यंगुलमानं तु। त्रिंशदंगुलमायतं ॥
तद्वस्त्रं द्विगुणीकृत्य। गालयेज्जलमापिबेत् ॥
तास्मिन् वस्त्रे स्थितान् जीवान् स्थापयेज्जलमध्यमे ॥
एवं कृत्वा पिबेत्तोयं। स याति परमां गतिम् ॥

अर्थात्—२० अंगुलका चौडा और ३० अंगुल का लंबा ऐसे वस्त्रको दोहरा करके उसमें पानी छान कर उस गलते में रही हुई जीवानी जिस स्थान का पानी हो उस स्थान में पीछा डाल कर पानी वापरता है वह परम गति—देवगतिको प्राप्त जाता है।

विना देखे वस्तु वापरनेका बडा दोष.

मकान, वस्त्र, पक्वान्न, आटा, दाल, भाजी, पानी, ऊखल, घट्टी, चूला, लकडी, छाने, बरतन वगैरा कोई भी वस्तु आंखोंसे विना देखे कभी भी काममें लेना नहीं, क्यों कि—कितनी ही वस्तुओं में त्रसजीव अपना घर बनाकर रहते हैं, कित-

नीक वस्तुका आश्रय करके रहते हैं, उस वस्तु को जो अपन बिना देखे काममें लावेंगे तो उन जीवोंका घात हो जायगा, और जो विषारी प्राणी के वापरनेमें आगया तो अपने को भी दुःख होगा !

पतली वस्तुको खुली रखनेका दोष

दूध, दही, घृत, मक्खन, तक्र (छाछ), तेल, पानी वगैरा पतली वस्तुका बरतन कभी भी खुले (उघड) नहीं रखना, क्यों कि उसमें त्रासजीव पडकर मृत्युको प्राप्त होते हैं, वस्तुकी भी खराबी होती है, और खानेमें आनेसे अनेक प्रकारके रोगों की उत्पत्ति होती है ।

त्रसजीवके घातके विविध प्रकार

कितनेक अधर्मी लोग घरमें तथा गौ आदिके वाडेमें मच्छर डास आदि जीवोंको मारनेके लिए धुआं करते हैं, माचा (पलंग) आदिमें खटमलको मारनेके लिए गरम २ पानी उसपर डालते हैं, तथा पानीमें डुबाकर उनको मार डालते हैं, अनाजके

धनेरिये वगैरा जीवोंको मारनेके लिए पानीमें पखालते [धोते] हैं, दीपक उघडा रखते हैं, जूतेमें नाल-कीले लगवाते हैं, रातको लीपना, भोजनादि पकाना, छाछ आदि बनना, चूल्हे [परेंडे] पर चंदुवे [छत्त] नहीं बांधना वगैरा अनेक त्रास जीवके घातके कर्तव्य (काम) हैं, यह धर्मात्माको करने योग्य नहीं है, अपनी आत्माके समान सब आत्माको जानना चाहिये।

त्रासजीवके रक्षणके कितनेक नियम ऊपर बताये हैं, इस प्रकारसे संसारमें रहते हुए और अनेक काम करते हुए जो विचारपूर्वक काम करेंगे तो बहुतसे त्रसजीवोंका बचाव कर सकेंगे !

स्थावरप्राणीके संरक्षण

संसारके बहुतसे काम ऐसे हैं कि स्थावर प्राणीकी हिंसा विना होते ही नहीं हैं, इसलिए स्थावर प्राणीकी हिंसाके दो विभाग किए हैं। यथा—

[१] सार्थक और अनर्थक जिस कामके किए

बिना संसारका काम चले नहीं, उस काममें जितनी हिंसा करनी पडती है उसको सार्थकहिंसा कहते हैं और कामसे जो अधिक हिंसा होती है उसे अनर्थकहिंसा कहते हैं ।

रहनेके लिए घर होते हुए भी दूसरा घर बनाना, कच्ची मट्टीसे हाथ वगैरा धोना, विनाकारण जमीन खोदना, दूसरा रास्ता होते हुए भी मट्टीके ढेरको खूंदते हुए चले जाना, मट्टीके ढेरपर बैठना, बिना काम पत्थर आदि तोडना-फोडना, अर्थात्—पृथ्वी-कायकी अनर्थ हिंसा इस प्रकार होती है ।

(२) तालाब, कूप, बावडी, नदी आदि जलाशय (सरोवर) के अंदर उतरकर स्नान करनेसे पानी दुर्गंधित होकर रोगिष्ट होता है; और शरीरसे स्पर्श हुआ गरम पानीका वेग जितनी दूर जाता है उतनी दूरके कितनेक जीव भी मर जाते हैं, इसलिए पानी के अंदर स्नान करना यह भी अनर्थ है, तैसे ही अज्ञानी मनुष्यकी तरह मरे हुए मनुष्यके शरीरकी राख तीर्थस्नानके पानीमेंडालना यह भी अनर्थ है।

क्यों कि राख यह क्षार पदार्थ है और अस्थि [हड्डियां] पानीमें डालनेसे पानी गरम होता है जिससे भी असंख्य प्राणीकी घात होती है, इसमें फायदा कुछ भी नहीं है, क्यों कि मरे बाद शरीर का कितना ही प्रयत्न किया जाय तो भी उस जीवको उत्तम [स्वर्ग] गति प्राप्त नहीं होती है। उस जीवने तो जैसे जैसे कर्म किए थे वैसी गति उसकी उस ही दिन होगई, तैसे ही कितनेक भोले लोग ग्रहण पडे बाद घरमेंके पानीको बाहर ढोल [फेंक] देते हैं और बाहरका पानी घरमें लाते हैं, यह भी अनर्थ है, क्यों कि सरोवरके पानीपर प्रत्यक्षमें ग्रहणकी छाह पडी है उसे तो घरमें लाते हैं और ग्रहणकी छाह पडनेसे बचा हुआ जो घर का पानी है उसे फेंक देते हैं, यह कैसी मूर्खता है? अच्छा घरमें रहे हुए पानीको जो ग्रहण लगा तो दूध, दही, घृत वगैरा पदार्थोंको भी ग्रहण लगा, लेकिन फिर उनको बाहर क्यों नहीं फेंकते हैं? तब कहते हैं कि उसमें तुलसीपत्र रख दिया

था। फिर पानी क्या फोकटमें आता है? किंतु मूर्ख लोग इतना भी नहीं समझते कि पानी जग-जीवन है उसके विना क्षण भर भी नहीं रह सकते हैं और पानी रत्नोंसे भी बहु मूल्यवान् है।

(३) शरीर आच्छादन [ओढने] के लिए अनेक वस्त्र होनेपर भी कितनेक लोग शीत (ठंड) का निवारण करनेको रास्तेका कूडा कचरा इकट्ठा करके और लकड, छाने, घास वगैरा जो संसारके अनेक काममें आनेवाले पदार्थोंको जलाकर तापा करते हैं, यह भी अनर्थ है, क्यों कि ऐसे तापनेसे एक तरफ उष्णता और दूसरी तरफ शीतलता रहनेसे सर्दी गरमीकी बीमारी होती है और जो कभी भूल कर शरीरको तथा वस्त्रको अंगार लग गया तो जलकर अकालमृत्यु होजाती है। तैसे ही कितनेक लोग दीपावलीको तथा लग्नादिप्रसंगमें दारू (बारूद) के खिलोने छोडते हैं, यह भी अनर्थ है, यद्यपि उस क्षणभरको मजा मालूम पडता है, परन्तु बहुतसी वक्त मनुष्योंकी मृत्यु हो जाती है

तो फिर दूसरे जीवोंका तो कहना ही क्या? दीपावलीके दिन लक्ष्मीके प्राप्तिके लिए लक्ष्मीकी पूजा करते हैं, फिर लक्ष्मीपूजनकी लक्ष्मी [धन] में आग क्यों लगाते हैं।

आजकल तम्बाकू पीनेका व्यसन बहुत बढ गया है, यह बडा नुकसान करनेवाला है। रक्त खराबी, वीर्यकी हानि, क्षय वगैरा रोग उत्पन्न होते हैं और घासके घरमें जो कहीं बिडी वगैरा पड जाय तो बडा नुकसान व महा अनर्थ होजाता है।

(४) झूलेपर झूलना भी अनर्थ है, क्यों कि कितनेक मनुष्य गिरकर मर गए हैं, पंखा करने, बाजे वगैराका बचाव जहांतक हो करना चाहिए।

(५) वनस्पति ३ प्रकारकी होती है– १ गोधूम [गेहूं] चने वगैरा अनाजके एक एक दानेमें एक एक जीव होता है, २ हरी भाजी, फल, फली इनके छोटेसे टुकडेमें असंख्यात जीव होते हैं, और ३ कांदे, लशुन, गाजर, आलू, सकरकन्द वगैरा जो जमीनके अंदर उत्पन्न होते हैं उनके छोटेसे छोटे

टुकडेमें अनंत जीव होते हैं, इसका विचार करना चाहिए। अनाज विना तो संसार चलना असह्य है, परन्तु भाजी. फली फलादिकी कमी की जाय तो बहुत अच्छा है, और कन्द, मूल, फल तो कभी नहीं खाना चाहिये, क्यों कि कंद कितने ही दिन जमीनमें रहे तो भी पकता नहीं है और जैसे कच्चे गर्भको पेट चीरकर बाहर निकालते हैं तैसे ही पृथ्वीका पेट फाडकर कन्द बाहर निकालते हैं, इसलिए इसका खाना अनर्थकारी है।

जो स्थावर जीवोंके पांच प्रकार कहे हैं उन्हें समझकर जो बन आवे तो सर्वथा हिंसाका त्याग करना चाहिए। सीधे बने बनाये मकान, गरम-पानी और भोजन संसारमें बहुतसे मिलते हैं जिस से अपनी जिंदगी सुखसे निर्वाह हो सकती है। फिर हिंसाके प्रपंचमें फंसकर दोनों लोकमें दुःखके भागी नहीं बनना चाहिए। जो सर्वथा स्थावर जीवोंका हिंसाका त्याग नहीं बन सके तो अनर्थक हिंसाका तो जरूर ही त्याग करना चाहिए और

आर्थिककी मर्यादा करनी चाहिए कि आजके दिनसे वर्षमें या उमरपर्यंत इतने तोले इतनेसे इतने मनके उपरान्त मट्टी, पानी, वनस्पति इनकी हिंसा नहीं करूंगा, दीपक, चूल्हे, पंखे इतने उपरान्त नहीं लगाऊंगा, इस प्रकार संसारमें जितने हिंसा के कर्तव्य हैं उन सबकी मर्यादा करनी चाहिए, मर्यादा करनेके पहिले निश्चयात्मा बनकर आगेका विचार करना कि इतनी वस्तु रखनेसे मेरे आगे किसी भी काममें अडचन तो पडनेवाली नहीं, एक तोले वस्तुके स्थान दो तोले वस्तु रक्खी तो कुछ बुराई नहीं परन्तु मर्यादा किए बाद प्राणान्त होजावे तो भी की हुई मर्यादाको भंग नहीं करना, इस प्रकार करनेसे इच्छा-तृष्णाका रोधन होगा, इसलिए मर्यादाका संकोच करते करते कभी ऐसा भी दिन प्राप्त हो जायगा कि सर्वथा हिंसाका त्यागी बन सबके अभयदाता बन जायंगे।

स्वात्माकी रक्षा करनेका बोध

ऊपर जो "अहिंसा" धर्मका निर्वाह करनेके

विषय और नियम कहे हैं, यह परात्माकी रक्षा करनेके कहे हैं, परन्तु जो अपनी आत्माकी रक्षा करेगा वही परात्माकी रक्षा कर सकेगा, इसलिए अब कुछ स्वात्माकी रक्षा करनेका उपदेश देता हूं, उसे दत्तचित्त हो पठन कीजिए ।

स्वात्माकी रक्षाका अर्थ ऐसा नहीं समझना चाहिए कि भक्ष्याभक्ष्यका विचार नहीं करके इच्छित पदार्थका भक्षण करके शरीरको पुष्ट करना तथा विषयकषायसे अन्तरात्माका पोषण करना, धनका कुटुम्बका संयोग मिलाकर किसी प्रकारकी बडी उपाधि (पदवी) प्राप्त करना, या विषयभोगमें लुब्ध होना, इत्यादि कामोंमें किंचित् सुख प्राप्त होता है, परन्तु इनका परिणाम आत्माको दुःखदाता होता है । भर्तृहरिशतकमें कहा है कि—

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं ।
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं ।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥

अर्थ—पंचेन्द्रिय संबंधी जो भोगोपभोगमें

लुब्ध होते हैं उनको रोगका भय रहता है रोगोत्पत्तिके होनेसे भोग नष्ट होजाते हैं । कुल स्त्री पुत्रादि कुटुंबमें लुब्ध होते हैं उनको चवने (मृत्यु) का डर है, कुटुंबका ग्रास मृत्यु कर जाती है जिससे वे विरहव्याकुल बन जाते हैं, जो सुवर्णरत्नादि धनमें लुब्ध हैं उनको नृप-राजाका भय है, नृप रुष्ट होकर द्रव्य हरण करनेसे दरिद्री बनते हैं, जो मौनपना चुप धारण कर बैठते हैं उनको दैन्यताका भय है, लोग दीन कहते हैं, जो तन-बल, धन-बल, जन-बलमें मदस्थ बनते हैं उनको शत्रुका भय है, शत्रु उनके बलका हरण कर निर्बल बनाते हैं । जो अपने शरीरके गौर वर्णादि रूपमें रच रहे हैं उनको जराका भय है, वृद्धावस्था प्राप्त हो रूपको नष्ट भ्रष्ट कर देती हैं, जो तर्क, व्याकरणादि शास्त्रविद्याके मदमें छकते हैं उनको वादियोंका भय है, विद्वान् वाद द्वारा पराजय कर शरमिंदे बनते हैं, जो क्षमादि गुणके गर्वमें गर्विष्ट हैं उनको खल [मूर्ख] का भय है, उनका मूर्ख उपहास्य कर चिडाते हैं, और जो

वस्त्रभूषण भोजनादिसे शरीरका पोषण करनेमें सुख मानते हैं उनको कृतांत [काल] का भय है, काल शरीरको भक्ष कर लेता है । इस प्रकार संसारके सब पदार्थों भयव्याप्त होरहे हैं, केवल वैराग्य [धर्म] है उसमें किसी भी प्रकारका भय नहीं है।

उक्त कथनको आप ही अपनी ज्ञानदृष्टि कर जगत्में रहे हुए धनेश्वारियों, कुटुंबाधिकारियों, विषयाशक्तोंके अंतःकरणका अवलोकन करनेसे प्रत्यक्ष होगया होगा कि बहुतोंका मन सदैव संतप्त रहता है, चारों तरफका डर उनके मनमें रहता है, इज्जत संभालनेकी फिकरमें लगे रहते हैं, वे भिक्षुक के समान अपना आयुष्य पूर्ण करते हैं, इसलिए ही ज्ञानी महापुरुषोंने " संसारको असार " अर्थात् केवल दुःखपूर्ण ही कहा है, संसारीजन मोहमायाके फंदेमें फसे हुए झूंठा नाम मिलानेके लिए व विषयोपभोगमें व्यर्थ जन्म गमाते हैं, अपनी आत्माके साथ विश्वासघात करनेसे आत्मघाती कहे जाते हैं ।

ऊपर जो षट् जीवकायकी रक्षा करनेको कहा है वह देखनेमें तो परात्माकी रक्षा दिखती है परंतु आंतरिक ज्ञानचक्षुसे विचार किया जाय तो स्वात्मा की ही रक्षा है, क्यों कि कर्मोंका नियम है कि उनसे भोगे विना कदापि छुटकारा नहीं मिल सकता अपन दूसरेको दुःख देंगे तथा मारेंगे तो उसका बदला उस ही प्रकार इस जन्ममें तथा आगेके जन्म में आत्माको अवश्य ही भोगना पड़ेगा, उसे ही आत्मघात कहते हैं, और जो किसीको दुःख नहीं देता है मारता नहीं है तो उसको भी कोई दुःख देने तथा मारनेमें समर्थ नहीं है, इसे ही आत्माकी रक्षा-आत्मदयाकी कहना, इसलिए परात्माकी रक्षा करने वाले अपनी आत्माकी ही रक्षा करते हैं ऐसा समझना।

षड्रिपु जीतनेका बोध

और भी स्वात्माकी घात करानेवाले अनादि कालसे आत्माके साथ ही में रहे षड्रिपु—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर है इनका नाश करना उसे भी स्वात्माकी दया करना ही कहा जाता है।

१ "काम"–इस शत्रुके योगसे सब संसारी लोगोंका जीव व्याकुल होरहा है, अपना भाव भूल कर दुःखको सुख मान बैठे हैं स्त्री, पुरुष विषयोपभोग भोगते हैं उसे काम कहते हैं। विष जहर को कहते हैं और 'य' प्रत्यय लगानेका कारण यह है कि विष तो स्पर्शनेसे तथा खानेसे प्राणहरण करता है और विषय तो स्मरणमात्रसे ही मनुष्य को बावला बना देती है फिर सेवन करनेसे उसका परिणाम खराब होवे इसमें संशय ही क्या ? इसलिए साधु महापुरुष तो सर्वथा ब्रह्मचर्यव्रत पालते हैं, स्त्रीमात्रको माता भगिनीके समान समझते हैं, परंतु गृहस्थसे संपूर्ण ब्रह्मचर्य पलना मुश्किल है गृहस्थाश्रममें विषयसेवनकी गरज फक्त पुत्र प्राप्तिके लिए होती है, इस कार्यके साधनके लिए फक्त एक महिनेमें एक दो दिन ही होते हैं, अनंतर सब महिने ब्रह्मचर्यव्रत पालना चाहिए। वीर्य को शरीरका राजा कहा है, इसका जितना अधिक रक्षण होगा उतना ही आत्माको ज्यादा सुख प्राप्त

होगा, बुद्धि कांति आयुष्य आखिरपर्यंत कायम रखनेका एक सच्चा उपाय यही है, जो विषयोपभोग में मशगुल बनकर एक इस ही को सच्चा सुख मान कर बैठे हैं, वीर्यका स्वरक्षण करते नहीं हैं वे शारीरिक संपत्तिका, बुद्धिका, कांतिका नाश करके गरमी, सुजाक, प्रमेह वगैरा दुष्ट रोगोंके फन्देमें फंसकर अतिदुःखसे व्याकुल बनकर अकाल-मृत्युको प्राप्त होते हैं, इसलिए ही यह कामरूप शत्रु बडा ही भयंकर है, इसके फंदेमें फंसनेवाले आत्मघाती होते हैं और ब्रह्मचर्य पालनेवाले स्वात्माके रक्षक हो धर्मात्मा होते हैं ।

२ क्रोध—इस शत्रुको शास्त्रमें ज्वाला [अग्नि] की उपमा दी है, जिस प्रकार अग्निके प्रसंगसे वस्तुका नाश होजाता है तैसे ही जहां क्रोधाग्नि प्रज्वलित होती है वहां दया, क्षमा, शील, संतोष, प्रेम, भक्ति, विनय, तप, संयम, समाधि वगैरे सद्गुण भस्म होकर जिसका प्रभाव शरीरपर पडनेसे मनुष्य सुरूपका कुरूप, सद्गुणीका दुर्गुणी,

प्रेमीका अप्रेमी, बनकर जगत्में अपयशरूप दुर्गंध का प्रसार करता है, क्यों कि क्रोधसे संतप्त बना हुआ मनुष्य अन्धेके समान बनकर माता, पिता, गुरु, शिष्य, बंधु, भगिनी, स्वामी, सेवक, मित्र, स्वजन, उपकारी इत्यादि किसीका भी विचार नहीं करता है, वक्तपर घात भी कर डालता है, ऐसा जबर शत्रु कोई है तो क्रोध है, इसलिए मुसलमान लोग इसे गुस्सा (गू=विष्टा सा=सरीखा) कहते हैं इसका निग्रह करनेके लिए क्षमारूप खड्ग धारण करना चाहिए। अर्थात् [१] अपनेको किसीने अपशब्द कहा तथा गाली दी तो उसके अर्थकी तरफ अपनी दृष्टि लगाना चाहिए, कि यह जो कहता है वह दुर्गुण मेरेमें है या नहीं; यदि वह दुर्गुण अपनेमें नजर आगया तो यह विचार करना कि वैद्य (हकीम) को तो अपने शरीरके अंदरके रोगकी परीक्षा कराने के लिए 'फीस' देनी पडती है, और यह तो बिना फीस लिए ही अपने अंदरका दुर्गुणरूप रोग बताता है, इसलिए अपनेको इसका उपकार मानना उचित

है और जैसे रोगकी परीक्षा होनेके बाद औषधोपचार कर रोगको दूर करते हैं, तैसे ही यह दुर्गुण दूर होवे ऐसा उपाय अब मुझे करना चाहिए, और [२] उसने कहा है वह दुर्गुण अपनेमें नजर नहीं आवे तो विचारना चाहिए कि हीरेको किसीने कंकर कह दिया तो वह कंकर नहीं होता है, तैसे ही उसके कहनेसे मैं कुछ दुर्गुणी नहीं होता हूं, फिर बुरा मानने का कोई कारण नहीं है, इत्यादि विचारसे क्षमारूप शस्त्रसे क्रोधरूप शत्रुका निग्रह करना चाहिये।

[३] मद-मदिरा (दारू) को कहते हैं जैसे मदिरा ग्रहण करनेसे विद्वान् लोग भी ज्ञान छोडकर बीभत्स शब्दोच्चार करने लग जाते हैं, घूडेपर लोटते हैं, और कभी कभी कुत्ते भी उनके मुखमें लघुशंका निवारण करते हैं, मदान्ध बने लोग भी भक्ष्याभक्ष्यका, कृत्याकृत्यका विचार नहीं करते हैं, वक्तपर माता, भगिनी, पुत्रीके संग भी व्यभिचार सेवन करनेमें नहीं चूकते हैं। घर, बर्तन, वस्त्रादि बेचकर भी पूर्ण करते हैं, और फजीतेसे अकाल

मृत्युके ग्रास बनकर नरकमें यमदेवताके हाथसे उबलता हुआ सीसा, तरुआ, तांबाका रस प्राशन करते हैं । इस प्रकार गर्विष्ठ मनुष्य भी मदान्ध बनकर नाम कमानेके लिए केवल दो दिनकी वाह वाह लेनेके लिए रंडियां नचानेमें दारूखाना छोडने [खोलने] वगैरा कुकर्मोंमें घर, धनको स्वतः बत्ती लगानेमें देर नहीं लगाते हैं । थोडा ही अपमान हुआ कि आत्मघात करके मरकर नरकगतिमें यमके मेहमान बनते हैं, वहां मारण, ताडन वगैरा अनेक दुःख भोगते हुए हजारों वर्ष रो रो निकालते हैं, ऐसा आत्मघातिक यह मदरूप शत्रु हैं इसका नाश करनेके लिए विनय-नम्रतारूप शस्त्र धारण करना चाहिए। मनमें विचार करना चाहिए कि जो यह ऊंच स्थिति प्राप्त हुई यह पूर्वोपार्जित पुण्यके फल है, अपनी आत्माको सुधारनेके लिए जो यह उत्तम सामग्री प्राप्त हुई है इसके अभिमानके वश होकर नुकसान कर डालना यह कैसी जबर मूर्खता है, रावण और कौरव जैसे शूर वीरोंको इस गर्वने

सत्यानाशमें मिला दिया है तो फिर मेरी कथा क्या? तथा कितनी भी धन, संपत्ति, कुटुंब आदिका जोर हुआ तो भी इसके नाश होनेमें क्या लगती है। इस क्षणभंगुर शरीरकी सम्पदाका गर्व करना झूठा है, इत्यादि सद्विचारोंसे मदरूप शत्रुका नाश कर निरभिमानी होना चाहिए।

[४] मोह—संसारमें सब दुःखोंका मूल कारण मोहरूप शत्रु ही है, मनुष्य मोहमें अन्धा होकर अपने आत्मस्वरूपको भूलकर यह मेरा घर, यह मेरा धन, यह मेरा कुटुंब इसी तरह मेरा मेरा करता है। बडे २ श्रीमान्, विद्वान् भी धन कुटुंबके बेगारी हो रहे हैं जिनको रात-दिन चैन भी नहीं पडता है। यह सब प्रताप मोहराजाका ही है, मोहके संबंधसे इस लोकमें फजीता तथा अनेक दुःखोंको भोगना पडता है और परलोकमें नरकादि दुर्गतिकी विटंबना भोगते हैं, इस दुष्टशत्रुका पराजय करनेके लिए विचार करना कि, हे प्राणी! तू अकेला आया है और अकेला ही है, तेरा कोई भी नहीं है, तैसे ही तू

भी किसीका नहीं है, जिसको तू मेरा २ कहता है वे तेरे नहीं हैं, सब कुटुंब स्वार्थी (मतलबी) है जब तक मेरे पास धन है और तेरा शरीर बलवंत है तब तक ही तू सबको अच्छा लगता है, तबतक ही सब तेरा सत्कार करते हैं, तेरी आज्ञामें चलते हैं, जब तेरे पासका धन लुट जायगा तथा तू द्रव्योपार्जन करनेमें असमर्थ हो जायगा तब तुझे कोई भी न पूछेंगे उल्टा झगडा करेंगे और जो संपत्ति पर मोह रह गया तो तू मरकर भूत, सर्प, कीडा वगैरा बनकर उसमें उत्पन्न होगा। कहा है कि 'आसा जहां वासा' ऐसा मोह दोनों लोकमें दुःख देनेवाला होता है, इसलिए इस मोहको छोडना ही उचित है।

सवैया—मेरी मेरी क्या करेरे मूरख,
तेरी कहे क्या होगई तेरी।
जैसे बाप दादा गए छोड के,
तैसे ही तू भी जायगा छोडी।
मारेगा काल चपेट अचानक,
होगी घडी में राख की ढेरी।
सुन्दर ले चलरे कुछ संगत,
भूला कहे नर मेरी रे मेरी॥

[५] लोभ—पाप का बाप तथा पाप का मूल यह लोभ ही शत्रु है, इसके फन्देमें फसते ही तत्काल सब सद्गुणोंका नाश होजाता है। और इस फन्देसे निकलना भी बडा कठिन है, कारण कि जैसे २ लाभमें वृद्धि होती जाती है तैसे २ लोभमें भी वृद्धि होती जाती है, इस आशातृष्णाको तृप्त करनेके लिए मनुष्य क्षुधा, तृष्णा, शीत, ताप वगैरा अनेक दुःख सहन कर देशांतरोंमें जंगल, झाडी, समुद्रादि दुर्गमस्थानोंमें मारे मारे फिरते हैं, नीच लोगोंके गुलाम बनते हैं, जातिविरुद्ध कर्माचरण करते हैं, ऐसे अनेक कष्ट सहकर तृष्णाको तृप्त करना चाहते हैं, परन्तु इसकी तृप्ति नहीं होती है।

सवैया—जो दस बीस पचास भए।
शत होत हजारकी लाख मंगेगी ॥
क्रोड अरब्ब खरब्ब असंख्य।
धरापत होनेकी चाह जगेगी ॥
स्वर्ग पातालका राज मिले।
तो भी तृष्णा आधिकी आग लगेगी ॥
सुन्दर एक सन्तोष बिना शठ ?
तेरी तो भूख कभी ना भगेगी ॥

इस प्रकार संतोष प्राप्त किए बिना अन्य कितने ही प्रयत्न करो परन्तु इच्छा तृप्त होनेवाली नहीं है। तृष्णाके प्रेरे मनुष्य अन्तको अकाल मृत्यु के ग्रास होकर आगेके जन्ममें भी ऊपर कहे अनुसार दुःखके भोक्ता होते हैं, ऐसे लोभरूप शत्रुका पराजय करनेके लिए सन्तोषरूप शस्त्र धारण करना परमोचित है। अब विचार करना चाहिए कि कितनी सम्पत्ति हुई तो भी खानेके लिए शेर भर अन्न, शरीर ढकनेके [पहरनेके] लिए २५ हाथ कपडा और रहनेके लिए चार हाथ जगह इतना ही सबके काममें आता है। ज्यादा होता है वह सब योंही पडा रहता है, विशेषमें उसका प्रबन्ध करनेके लिए सदैव चिंतातुर रहते हैं, ज्यादा जो हो वह किस कामका ? और उससे विशेष सुख किस प्रकार मिल सकता है। मनुष्यों ! अपने दैव तथा तकदीरका भरोसा रक्खो।

सवैया—यद्यपि द्रव्यको सोच करे।

कहा गर्भमें केतो गांठको खायो ॥

जो दिन जन्म लियो जगमें ।
जब केतिक कोटी लिए संग आयो ॥
वाको भरोसा क्यों छांड अरे मन ।
जासों आहार अचेतमें पायो ॥
ब्रह्म भने जनि सोच करे वही ।
सोची जो बिरह लाहू लहायो ॥
जब दांत न थे तब दूध दियो ।
जब दांत भए तो अनाज ही देइ ॥
जीव बसे ही जल औ थलमें ।
तिनकी सुधि लेत सो तेरी ही लेइ ॥
क्यों अब सोच करे नर मूरख ।
सोच करे कछु हाथ येई ॥
जानको देत अजानको देत ।
जहानको देत सो तेरको देई ॥

देखिए ! जंगलमें रहनेवाले पशु, पक्षियों और जलचरोंको उनकी कोई जागीर नहीं, न उनका किसी वस्तुका संग्रह, बिलकुल ही निराधार दिखते हैं, तो भी वे किसी बातसे मोहताज नहीं रहते हैं, समय पर उनको दैवगतिसे सब कुछ मिल जाता है, फिर हम तो मनुष्य हैं बोलकर अपने विचार दूसरोंको दर्शा सकते हैं। पांव, हाथोंसे अनेक काम

कर शरीरादि रक्षाकी सामग्री क्या वक्तपर प्राप्त नहीं कर सकते हैं ? मनमें निश्चय हुआ तो कुछ टोटा नहीं है, इस प्रकार संतोष धारण कर लोभ-रूप शत्रुका पराजय करना चाहिए।

[६] मत्सर— जिन मनोविकारोंका उद्भव होकर दूसरेकी संपत्तिका अवलोकन कर ईर्ष्या उत्पन्न कर द्वेषाग्निसे संतप्त होकर उसको दुःखी करनेकी इच्छा होती है तथा उसका प्रयत्न करनेको सहज से ही मानसिक उत्तेजना होती है, तथा दूसरेकी कीर्ति श्रवण कर मनमें तलतलाट होती है उस मानसिक विकारको मत्सर कहते हैं। मत्सरी मनुष्यका कोई भी कार्य सफल नहीं होता है, जो जो सुख दुःखका अनुभव जगत्‌में होता है वह सब पूर्वकृत पुण्य पापके फल हैं, जिसने जैसे कर्म किए हैं उसी प्रकार उसे सुख दुःखकी प्राप्ति होती है, इसलिए जो दूसरोंका बुरा विचार करते हैं उस से दूसरेका तो बुरा नहीं होता है, किंतु बुरा चाहने वालेको बुरे परिणामोंके योगसे अशुभ कर्मका

बंध हो उसका फल उसको आगेके जन्ममें जरूर प्राप्त होगा। इस प्रकार यह मत्सरशत्रु मनुष्यको फसाकर दुःख देता है। इसका त्याग करनेके लिए धैर्य धारण करना चाहिए, और विचार करना कि, हे प्राणी ! तूने पूर्वजन्ममें पुण्य नहीं किए हैं जिससे धनकी, पुत्रकी, सुखकी कमी रहगई है, अब दूसरेकी ईर्ष्या करनेसे तथा पश्चात्ताप करनेसे कौनसा फायदा है व्यर्थ आगेको कर्मबन्ध क्यों करना चाहिए? जैसा तैने किया तैसा तूने पाया इसमें दूसरा क्या करे।

शैर—गंदूम अज गंदूम बरूयत जो ज जो।
अज मकाफात है अमल गाफिल मस्मो॥

जो तूने खेतमें गेहूं बोये होगे तो तू गेहूं पायगा और जो जौ बोये होगे तो जौ पायगा इसमें तो अब फेरफार होने वाला नहीं है, ऐसा बिचार कर समभाव धारण करना। सुखप्राप्त होनेसे खुशी और दुःख प्राप्त होनेसे उदासी धारण नहीं करना चाहिए किन्तु आगे सुखप्राप्ति

की इच्छा हो तो जैसे गेहूंके इच्छुक खेत मे गेहूं बोतें हैं और गेहूं ही पाते हैं तैसे ही इस जगत-रूपी खेतसे दुःखरूपी बीजको निकाल कर सुख रूपी बीज बोना चाहिए, अर्थात् दुखी जीवोंके दुःखको दूर कर उनको सुखी करना चाहिए, उस सुखरूप बीजका वृक्ष दूसरे की अन्तरात्मामें उत्पन्न होकर उस वृक्षके सुखरूप फल आपको आनन्दसे प्राप्त होंगे। अहो बन्धुगणो ? धर्म, दया, सन्तोष सत्य, प्रामाणिकपना इत्यादि शुभगुणोंका संग्रह अपनी आत्मामें करो जिससे इस जन्ममें भी सुख भंडारके अनुभव लेनेका अवसर प्राप्त होगा और आगेके जन्ममें भी सुख ही सुख प्राप्त होगा। यों धर्म जागृती कायम रहकर आत्माका कल्याण होगा, मोक्षकी प्राप्ति कर अभय सुखसागरमें गरक बनोगे।

छप्पय —

परतिय मात समान गिनो परधन पाषाना।
परनिंदा मुकबनो सहो कटुवचन सयाना॥

झूठ कचू न भख्यो लख्यो सब आप समाना ।
साधु वचन विश्वास अजपा जप भगवाना ॥
इतने काम करते हुए खरच श्रम कुछ ना लगे ।
अचल सुख मुक्ति मिले अमोल आत्मज्योति जगे ॥

श्लोक- किं बहुलेखने नेह, संक्षेपादिदमुच्यते ।
त्यागो विषयमात्रस्य, कर्तव्योऽखिलमुमुक्षुभिः ॥

अर्थ—ज्यादा लिखके क्या करना है, संक्षेपमें इतना ही कहना है कि मोक्षके अभिलाषियोंको सर्वथा त्याग करना चाहिए ।

इस प्रकार उक्त कथनके अनुसार षड्रिपुके फंदे में नहीं फंसते हुए सद्गुणोंको स्वीकार करना उस ही का नाम स्वात्मकी रक्षा और दया है । इस प्रकारके धर्मका समाचरण करना यही मनुष्यजन्मप्राप्ति का जो सार है सो समझना। अहो सुज्ञ मनुष्यों ! इस प्रकार सद्धर्मको स्वीकार करके प्राप्त मनुष्य जन्मको सार्थक कर अखंडसुखके भोक्ता बनो यही नम्र प्रार्थना है ।

श्रेयश्च प्रेमश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रयसो वृणीतो ज्ञेयो मन्दो योगक्षेमाद्
वृणीते ॥

कठोपनिषद्द्वितीयवल्लीश्लोक ॥२॥

अर्थ—अरोचक है परन्तु कल्याणका मार्ग है, और रोचक है परन्तु अकल्याणका मार्ग है, यह दोनों मनुष्योंको प्राप्त होते हैं, किन्तु बुद्धिमान् दोनोंके स्वरूपको समझ कर कष्टसाध्य कल्याणके मार्गको ग्रहण करता है और मूर्ख लोग सहल परन्तु अकल्याणके मार्गको ग्रहण करते हैं, जैसा मार्ग ग्रहण करते हैं वैसा फल प्राप्त करते हैं।

सवैया—जो कहा सो मत्रीभावसे कठिन लगा तो क्षमा ही कीजे।
पथ दर्शाना है काम हमारा हित तुम्हारा विचारके लीजे ॥
कटुक औषधि रोग हरे अरु मिष्ठ ही विष दिये तन छीजे।
सुखेच्छु बोल "अमोल" ये मानत मूढमतिको बोध न दीजे ॥

इति श्री

परमपूज्य श्रीकहानजी ऋषीजी महाराजकी सम्प्रदायके
बालब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलक ऋषीजी महाराज
प्रणीत "सद्धर्म-बोध" नामक ग्रन्थ

— समाप्त —

भाग दुसरा.

॥ अथ श्री णमोकार महामंत्र ॥

णमोकार मंत्र	गुण	अक्षर
णमो अरिहंताणं	१२	७
णमो सिद्धाणं	८	५
णमो आयरियाणं	३६	७
णमो उवज्झायाणं	२५	७
णमो लोए सव्वसाहूणं	२७	९

तर्ज–कमलीवालेकी.

जिनमतका डंका आलममें बजवा दिया शिवपुरवालेने, जिनवाणीका अमृत आलममें वर्षा दिया शिवपुरवालेने ॥ टेर ॥ जो श्रीमुखसे फरमाया था, गणधरने उसको गूंथलिया । कहा सार चीज नवकार रटो, फरमा दिया शिवपुरवालेने ॥१॥ जिनमत ॥ अज्ञानातमको दूर किया, और ज्ञानका रोशन जगा दिया । मिथ्या अंधारा मेट किया, उज्यारा शिवपुरवालेने ॥२॥ जिनमत ॥ सतगुरुने यह उपदेश किया, प्रभुनाम सुमरले अहे जिया । भवसिन्धुसे तिर जावेगा, फरमा दिया शिवपुरवालेने ॥३॥ जिनमत ॥ " हंसराज " सदा वंदत चरण, प्रभुनाम सदा संकट हरना । सरणेसे हो जावे तिरना, फरमा दिया शिवपुरवालेने ॥४॥ जिनमत ॥ इति ॥

मूंजी साहूकारनों स्तवन ।

मैंतो मूंजी साहूकार, पैसा खरचूं नहीं लगार ॥ टेर ॥
साधु संतके कबहूं न जाउं, वे कहे वारंवार । सुकृत करको, लाभ लूटलो, सुणता लागे खार ॥१॥ दूध दही कबहूं नहीं खांउ, जो खांउ तो छाच । एक वक्त जो वस्त्र पहंनू, वर्ष चलाऊ पांच ॥२॥ मूंजीके घर व्याह रच्यो, घर त्रिया समझावे । घरकी मिल सब गीत गायलो, सोपारिया बच जावे ॥३॥ मरूं तो सिखला जाउं कुटंबने, दान पुण्य नहीं करना । नहीं खाना और नहीं खिलाना, जोड जमीं बिचधरना ॥४॥ कौडी २ संचय कर सब, परभवमें लेजार । गुरु प्रसादे चौथमल कहे, ऐसी लीनी धार ॥५॥

महावीर स्वामीनो स्तवन ।

तुम माल खरीदो, त्रिशला नंदनकी खुली दुकानजी ॥ टेर ॥
शास्त्ररूप भरी बहु पेटियां, मुनिवर बने बजाजी । वजह २ का माल देखलो, कर अपना मनराजी हो ॥ तुम ॥ १ ॥
जिनवाणीको गज है सांचो, जरा फर्क मत जाण । माप२ सत्गुरु देवे छे, मत कर खेंचाताणजी ॥ तुम ॥ २ ॥
जीवदयाकी मलमल भारी, शुद्ध मन मिसरू लीजे । दबलशीण समता तणोसरे. चावे सो कह दीजेजी ॥ तुम ॥ ३ ॥
समताको बंदागल भारी, साडी ले संतोष । ऐसा कर व्यापार जिन्होंसे, चेतन पावे मोक्षजी ॥ तुम ॥४॥
खुशी होय तो सोदा लेवो. नहीं झगडेका काम । मन

आवे तो मोल लेजावो, म्हे, नहीं मांगा दामजी ॥ तुम ॥५॥ माल वीकेछे थोडो जिसमु, खर्च पुरो नहीं चाले। आवेला कोई उत्तम प्राणी, माल हमारे पल्लेजी ॥ तुम ॥६॥ माल वीके तो रहणो होसी, सुणयो भवीजन बात । भरया खजाना कदीयन खुटे, सत्गुरु सिरपर हाथजी ॥तुम॥७॥ समत १९३६ सालमें, अम्बाला चौमास । करण मुनि उपदेश सुनायो, मोक्ष सावनरी आशजी ॥ तुम ॥ ८ ॥

तर्ज—छोटी बडी सईयांए.

श्रीरिषभदेव भगवान्, करो तो मेरी पालना ॥ टेर ॥ मैं चाकर हुं तुम चरणनको, हां सहाय करो महाराज, दुःखीको दुःखसे टालना ॥१॥ भवसागरमें मेरी नौका, हां, आन पडी मझधार; जल्दीसे संभालना ॥२॥ संकट मोचन विरद आपको, हां, निराधार आधार, करम रिपु गालना ॥३॥ ओम् ऋषभ तूं हीं मम रक्षक, हां, तूं हीं मेरे सिरताज, फन्देसे निकालना ॥ ४ ॥ गुरुपरसादे चौथमल गूं, हां. अरज करे हरबार जरा तो निहालना ॥५॥

तर्ज—मेरे स्वामी बुलालो मुगतमें मुझे.

महावीरसे ध्यान लगायां करो, सुख सम्पति इच्छित पायां करो ॥ टेर ॥ क्यों भटकता जक्तमें, महावीरसा दूजा नहीं । त्रिशलाके नंदन जगत वन्दन, अनन्त ज्ञानी है वही । उनके चरणोंमें शीश नमायां करो ॥१॥ जगत भूषण विगत दूषण, अधम उधारण वीर है । सूर्यसे भी तेज है,

सागर सम गम्भीर है । ऐसे प्रभुको नित उठ ध्यायां करो ॥३॥ महावीरके परतापसें, होती विजय मेरी सदा, मेरे वसीला है उन्हींका जापसे टले आफदा । जरा तन मनसे लोह लगायां करो ॥३॥ ळसानी ग्यारे ठाणा, आया चोरांसी साल है । कहे चौथमल गुरु किरपा से, मेरे वरते मंगल माल है । सदा आनंद हर्ष मनाया करो ॥४॥

तर्ज—दादरा.

विद्या पढनेमें जीया लगायां करो ॥ टेर ॥ विद्या ही नर और नारीका भूषण । आलसको दूर भगाया करो ॥१॥ विद्यासे इज्जत विद्यासे कीर्ति । सदा इसका अभ्यास बढाया करो ॥२॥ अमोल वख्तको हंसी मजाकमें । कभी भूलके तुम मत गंवाया करो ॥३॥ हंसना, लडना, गाली का देना। ऐसी बातें जबां पै न लाया करो ॥४॥ चौथमल कहे सुनो सब पाठक, नशेबाजोंके पास न जाया करो ॥५॥

तर्ज—अरज पर हुक्म श्रीमहावीर चढा दो.

उठो जिनधर्मके प्रेमी, नाम महावीर लेले कर । बजावो संघकी सेवा, नाम महावीर लेले कर ॥ टेर ॥ तुम हैं जैनियों लाजिम; तन, मन, धन तीनोंको । न्योछावर धर्म पै कर दो; नाम महावीर लेले कर ॥१॥ दुःख मोचन मोक्ष दाता; पद्द अरिहंत नृपको दे । करो उत्साहसे सेवा नाम महावीर लेले कर ॥२॥ शिव सुन्दर पुष्पमाला; कर कमलोंमें ले उभी । पहेनावे संग सेवकको; नाम महावीर

लेले कर ॥३॥ दुर्लभ नर जन्मका पाना; आर्यभूमि उत्तम कुलमें । अपूर्व लाभको लेलो; नाम महावीर लेले कर ॥४॥ तिरे जिसको तीर्थ कहेवे, तिरण तारण धरम जिसमें । करो गुण ग्राम चित्त मनसे; नाम महावीर लेले कर ॥५॥ चौथमल कहे सुनो सज्जन; यही है मोक्षकी कुन्जी । जल्दी जावोगे शिवपुरमें, नाम महावीर लेले कर ॥६॥

— श्री —

रूपा सतिके नंदन तुम को लाखों प्रणाम ।
केवळचंदजी के कुल उजियारे बालकपन में महाव्रत धारे ॥
जनमनमोहनगारे तुमपर लाखों प्रणाम ॥ १ ॥
हस्तिमलजी नाम तुमारे. यथा नाम व्रत गुणको धारे ॥
हँस मुख मुद्रावाले ॥ तुमपर लाखों प्रणाम ॥ २ ॥
जबसे आप शोलापुर पधारे। हर्षित हो रहे भक्त तुम्हारे ॥
सौभाग्य उदय हमारे ॥ तुमपर लाखों प्रणाम ॥ ३ ॥
वचन कला सुन हरषे सारे, प्रश्न व्याकरण सूत्र सुझारे ॥
सुंदर वचन उच्चारे ॥ तुमपर लाखों प्रणाम ॥ ४ ॥
परिग्रह ममत्व नरकमें डाले जिसमें उपधिके भेद हैं न्यारे ॥
सुनके सुघड जनधारे ॥ तुमपर लाखों प्रणाम ॥ ५ ॥
दौलत चरणमें अर्ज गुजारे अवगुन का हूं मैं भण्डारे ॥
तुम बिन कौन निवारे ॥ तुमपर लाखों प्रणाम ॥ ६ ॥

— श्री —

हे प्रभो ! आनंददाता, ज्ञान हमको दीजिये ।
शीघ्र ही इन दुर्गुणोंसे, दूर हमको कीजिये ॥

लीजिये हमको शरणमें, हम सदाचारी बने ।
ब्रह्मचारी धर्म रक्षक, वीर व्रतधारी बने ॥
ऐसी अनुग्रह और, कृपा हम पै हो परमातमा ।
हो सभासद सब यहांके, सब के सब धरमातमा ॥

२

भावना दिन रात मेरी । सब सुखी संसार हो ॥
सत्य संयम शीलका । प्रचार घर घर द्वार हो ॥ १ ॥
शांति अरु आनंदका । हर एक घर में वास हो ॥
वीर वाणी पर सभी । संसार का विश्वास हो ॥ २ ॥
रोग अरु भय शोक होवे । दूर सब परमातमा ॥
कर सके कल्याण ज्योति । सब जगतकी आतमा ॥ ३ ॥

मनकूं सिखामण विषे पद.

मना तोकुं–किसविध कर समजाऊं । चेतन तोकु किस विधकर समजाऊं ॥ तोकुं–वारंवार चेताऊंरे ॥ मना० ॥ तोकुं० ॥ यह–टेर ॥ हाथी होयतो–पकड मंगाऊं, पायमें जंजीर डलाऊं । मावत होयके–ऊपर बैठुंतो, अंकुश देके चलाऊं ॥ मना तोकुं० ॥ चेतन तोकुं० ॥ वारं वार० ॥ मना तोकुं० ॥ १ ॥ लोहो होयतो–धमण धमाऊं, दोए दोए ऐरण रोपाऊं । ले घनसें घनघोर मचाऊं, पाणी करणे चलाऊं ॥ मना तोकुं० ॥ २ ॥ सोनो होयतो–स्वागी मंगाऊं, करडाताव देवाऊं । ले फुंकणीने–फुकनेकुं बैठतो, जंत्रिमें तार खैंचाऊं ॥ मना० ॥ ३ ॥

गायन होयतो–गाय रिझाऊं, अंतर वयण बजाऊं । जिम-दासकी-याही अरज है, ज्योतीमें जोत समाऊं ॥मना०॥४॥

श्री महावीर प्रभुसें अरजी.

महावीर जिणंद, २ । कर्मोंके फंदसे छुडाय दो ॥ ॥ टेर ॥ तपश्याकी तोफ, ग्यानका गोला । 'मोह' का बुरुज उडायदो ॥ महा० ॥ कर्मोंके० ॥ १ ॥ लक्ष चौऱ्यांसी जीवाजोनसे । जन्ममरण मिटायदो ॥ महा० ॥ २ ॥ हुकमीचंदकी याही आरज है । मोकुं शिव-पुर पहुंचायदो ॥ महा० ॥ ३ ॥ इति ॥

उपदेशी–लघु पद.

[बतादे सखी–कौण गली गये शाम; यह–देशी]

बतादे भैय्या, इस जगमें तेरा कोण ॥ इस०॥ बतादे० ॥ इस० ॥ टेर ॥ देहसे स्नेह–करे क्यौं व्यर्थ । न रहे कीया जादूटोन् ॥ बतादे० ॥ इस० ॥ ॥ बतादे० ॥ इस० ॥ १ ॥ धन दौलत कुछ–काम न आता । पुन्य-खूटे जावे जूं पोन् ॥ बतादे० ॥ २ ॥ स्वजन सभी स्वार-थके हैं । जी जी करे–धन होन् ॥ बतादे० ॥३॥ क्षमा दया दान-यह धर्म तेरा । लेले अमोलसुख जोन् ॥ बतादे० ॥४॥

शिष्यप्रार्थना.

[तर्ज–अम्मा मुझे छोटीसी टोपी दिलादे]

गुरु मुझे ज्ञान का प्याला पिलादे, प्याला पिलादो आला बनादो । गुरू मुझ मोहबत का शरबत पिलादो ॥ टेर ॥ सोता हुआ हूं गफलत की निंद में । हां मेरा

पकड के पल्ला जगादो ॥ १ ॥ भवासिन्धु में मेरी नौका पडी है । आप इसे मल्लाह होके तिरादो ॥ २ ॥ काम क्रोध मद मोह चोर हैं । इस डाकू से मुझको बचादो ॥३॥ संसारका नाता झूंठा है त्राता । मुझे मुक्तिके मार्ग लगादो ॥४॥ चौथमल कहे गुरुजी मुझको । त्रिशलानन्दसे बेग मिलादो ५

श्रीपार्श्वनाथजीका स्तवन.

श्रीचिंतामणस्वामी अंतरजामी कृपा करोजी महाराज ॥ टेर ॥ दुहा ॥ सेवक ऊबो, बे कर जोडी सुण लीजो करतार । दीनदयाल दया कर दीजो । विनवूं चार हजार हो ॥१॥ श्रीचिंतामणस्वामी ॥ खटपटनो हवे काम नहीं है । चटपट निजर नीहार । छटपट करतां । बोले सेवक झटपट अरज गुंजार हो ॥२॥ श्रीचिंतामणस्वामी ॥ अवगुण म्हारा आज तकरा माफ करो तकशीर । लुळलुळ चरणामें शीष नमावूं । भजो, भव भव वीर हो ॥३॥ श्रीचिंतामणस्वामी ॥ मात पितासे बालक बोले, बोले तुतला बोल । ऐसो वृद्ध विचार सायबा दिलरी गुंडी खोल दो ॥४॥ श्रीचिंतामणस्वामि ॥ शुद्धबुद्ध आपो, दुरगत कांपो बापू पार्श्वनाथ । अश्वसेन भोमाजीके नंदा, तो दुनिया जोडे हात हो ॥५॥ श्रीचिन्तामणस्वामि॥ मेहेर करावो, मत ललचावो पावो अमिरसपान । टुंकी एक मेर करो महाराजा, मत करजो अपमान हो ॥६॥ श्रीचिंतामणस्वामि ॥ दास तुमारो पुत कपुता पुत सपुताजाण । मोहन सुत बादलकी अर्जी लिजो आप पहचान हो ॥७॥ श्रीचिन्तामणस्वामी ॥

मिथ्या ममत्व

(तर्ज—बिना रघुनाथके देखे नहीं दिलको करारी है)

चले जाओगे दुनियांसे, कहना ये हमारा है। उठा के चश्म तो देखो, कौन वहां पर तुम्हारा है ॥ टेर ॥ कहां से आए हो यहांपर, और क्या साथ लाए थे। बनो मुख-त्यार तुम किसके, जरा ये भी विचारा है ॥ चले० ॥ ॥ १ ॥ गुनाहोंके फरश ऊपर, लगा जुल्मोंका तकिया है। मजेमें नींद लेते हो खूब शैतान प्यारा है ॥ २ ॥ दिन खाने कमानेमें, ऐश मस्तीमें खोई रात। भलाई कुछ न की ऐसी, जिससे वहां पर सहारा है ॥ ३ ॥ जहां तक दम वहां तक है, तेरे धन माल और कुनबा। निकलते दम धरे जंगल, करे आखिर किनारा है ॥ ४ ॥ निगाह चौतरफ तू उस वक्त, जो फैलाके देखेगा। तो अकेला आप खाली हाथ, लिए जुल्मोंका भारा है ॥ ५ ॥ कजा आने की है देरी, फकीर सी दे चला फेरी। फिर मौका कहां लहेरी, किया तुझको इशारा है ॥ ६ ॥ कहां शम्भू चक्र मानी, कहां ब्रह्मदत्तसे भोगी। कहां वसुदेवसे योधा, हुए ऐसे हजारों हैं ॥ ७ ॥ गुरु हीरालालके परसाद, कहे मुनि चौथमल सबसे। बनो जिनधर्मके प्रेमी, तो सुधरे काज सारा है ॥ ८ ॥

मुक्ति जानेकी डिगरी.

[हीर रंझैका ख्यालकी, देशी]

मेरी अदालत प्रभुजी कीजिये । जिनशासन नायक—मुगती जानेकी डिगरी दीजिये ॥ यह टेर ॥ खुद चेतन मुद्दई बना है । आठुं कर्म मुद्दाला ॥ दावा रस्ता मुगती मारगका । धोका दे जाय टालाजी ॥ जिन. मुगती. ॥ १ ॥ तब कागद इस्टांप लिया ॥ तलवाणा क्षमा विचारी । सज्झाय ध्यान मजमून बनाकर । अरजी आन गुजारीजी ॥ जिन. ॥ २ ॥ मैं जाता था मुगती मारगमें । करमोने आ घेरा ॥ धोखा देकर राहा भुलाया । लूट लिया सब डेराजी ॥ जिन. ॥ ३ ॥ बहोत खराब किया करमोंने । चौऱ्यांसीके मांही ॥ दुःख अनंता पाया मैंने । अंत पार कछु नाहीं जी ॥ जिन. ॥ ४ ॥ सच्चे मिले वकील कानूनी पंचमहाव्रत धारी ॥ सूत्र देख मए सौदा किया । तब मैं अरजी डारीजी ॥ जिन. ॥ ५ ॥ पाचुं समती तीनुं गुप्ती । यह आठुं गवाह बुलावो ॥ शील असेसर बडा चौधरी । उसकुं पूछकर मंगावोजी ॥ जिन. ॥ ६ ॥ अरजी गुजारी चेतन तेरी । हुवा सफीना जारी ॥ हाजर आवो जवाब लिखावो । लावो साबूति सारीजी ॥ जिन ॥ ७ ॥ आठुं मुदाले हाजर आए । मोह मुक्त्यार बुलाए ॥ च्यार कषाय अरु आठो मदकुं । साथ गवाहीमें लाएजी ॥ जिनशासन

नायक—झूठा दावा है चेतन जीवका ॥ यह टेर ॥ मुद्दालेकी ॥ ८ ॥ हमने नहीं भरमाया इसको । यह मेरे घर आया ॥ करजा लेकर हमसे खाया । ऐसा फरेब मचायाजी ॥जिन. ॥ झुटा. ॥ ९ ॥ विषयभोगमें रमियो चेतन । घाटा नफा नहीं जाना ॥ करजदार जब लारे लागा । तब लागा पिस्तानाजी ॥ जिन ॥ झुटा ॥ १० ॥ हाजर खडे गव्हा हमारे । पूछिये हाल ज्युं सारा ॥ विनालिया करजा चेतनसें । कैसे करे किनाराजी ॥ जिन. ॥ झुटा. ॥ ११ ॥ चेतन कहे सत्ता भी मांहीं । सुनो सासन सिरदार ॥ इमानदार है गव्हा हमारे । जाणे सब संसारजी ॥ जिन. ॥ मुगती. ॥ १२ ॥ मैं चेतन अनाथ प्रभुजी । करम फिरे भी भारी ॥ जीव अनंते राहा चलतकुं । लुट चौऱ्यांसीमें डारीजी ॥ जिन. ॥ मुगती. ॥ १३ ॥ बडे बडे पंडित इण लुटे । ऐसा दम बतलाया ॥ धरम कहा और-पाप कराया । ऐसा करज चढायाजी ॥ जिन. ॥ मुगती. ॥ १४ ॥ हिंसा-माहि धरम बताया । तपशा सेती डिगाया ॥ इंद्रियसुख में मगन करीने । झूटाजाल फैलायाजी ॥जिन. ॥ मुगती. ॥ १५ ॥ ऐसा करो इनसाफ प्रभुजी । अपील होने नहीं पावे ॥ हा करसी चेतनकी होवे । जन्म-मरण मिट जा-वेजी ॥ जिन. ॥ मुगती. ॥१६॥ ज्ञान दर्शन करी मुन्सफी ॥ दोनोंको समझाया ॥ चेतनकी डिगरी करदीनी करमोंका करज बतायाजी ॥ जिन. ॥ मुगती ॥ १७ ॥

असल करज जो था करमोंका । चेतनसेती दिलाया ॥
शुद्ध संजम जद करी जमानत । आगेका दुःख मिटायाजी
॥ जिन. ॥ मुगती. ॥ १८ ॥ आश्रव छोड सम्वरको धारो ।
तपस्यमें चित्त लावो ॥ जल्दी करज अदा कर चेतन ।
सीधा मुगतिको जावोजी ॥ जिन. ॥ मुगती. ॥ १९ ॥
शुद्ध संजम जद करी जमानत ।, चेतन डिगरी पाई ॥
फागुण शुद्ध दिन मंगल । सन उगणीसे आठोइजी ॥
॥ जिन. मुगती ॥ २० ॥ इति ।

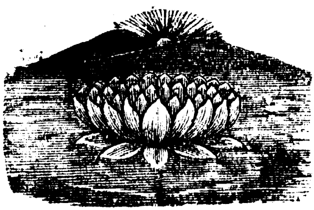

पुस्तक मिलनेके पते—

१. तिलोकचंद मोतीलाल लूणावत.
बिजापुर वेस, सोलापुर.

२. पारसमल बस्तीमल सुराणा.
चाटीगल्ली, सोलापुर.

संस्कृत, हिंदी, मराठी, कानडी, इंग्रजी, व
गुजरातीमें पुस्तक व इतर काम शुद्ध
व सुंदरताके साथ किये जाते हैं—
कल्याण पॉवर प्रिंटिंग प्रेस, सोलापुर.